www.vi

भूदान-यज्ञ

भूदान-यज्ञ मूलक ग्रामोद्योग प्रधान अहिंसक क्रान्ति का सन्देशवाहक – साप्ताहिक

सर्व सेवा संघ का मुख पत्र

वर्ष : १५ अंक : ४

सोमवार २८ अक्तूबर, '६८

अन्य पृष्ठों पर

अब वर्ण-संघर्ष ! —सम्पादकीय ३४

क्या संघर्षमुक्ति सम्भव है ? —विनोबा ३५

व्यक्तिगत मुनाफे की प्रेरणा के बिना ... —सिद्धराज ढड्ढा ३७

वारसा-सन्धि के देशों में विरोध-प्रदर्शन —जानकी देवी प्रसाद ३९

बेल्जियम : छोटा देश, बड़ा आदमी —सतीशकुमार ४१

बुनियादी शिक्षा की बुनियाद —विनोबा ४३

सर्वोदय-क्रान्ति की मौलिकता —क्रीस टेरेनियस

—धीरेन्द्र मजूमदार ४५

सम्प्रदाय-निरपेक्षता के लिए खतरे का संकेत —रामनन्दन सिंह ४७

आवश्यक सूचना

'भूदान-यज्ञ' १८ नवम्बर '६८ का परिशिष्ट 'गाँव की बात' मध्यावधि चुनाव को ध्यान में रखकर तैयार किया जा रहा है। चित्रों सहित यह अंक मतदाता-शिक्षण का सुन्दर और सरल माध्यम होगा। इस विशिष्ट परिशिष्टांक को 'भूदान-यज्ञ' से अलग भी भेजा जा सकता है—अगर पहले से हमें आर्डर मिल जाय। —व्यवस्थापक

सम्पादक
राममूर्ति

सर्व सेवा संघ प्रकाशन
राजघाट, वाराणसी–१, उत्तर प्रदेश
फोन : ४२८५

सत्याग्रह की शक्ति और सत्ता की सीमा

अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति के लिए दो मार्ग हैं : सत्याग्रह और दुराग्रह। हमारे ग्रन्थों में इन्हीं को दैवी और आसुरी प्रवृत्ति कहा है। सत्याग्रह के मार्ग में सदैव सत्य का आग्रह रहता है। किसी भी कारण से सत्य का त्याग नहीं किया जाता। इसमें देश के लिए भी झूठ का प्रयोग नहीं हो सकता। सत्याग्रह की मान्यता है कि सत्य की सदैव ही जय होती है। कभी-कभी मार्ग कठिन जान पड़ता है, परिणाम भयंकर मालूम होता है, और ऐसा लगता है कि सत्य को थोड़ा छोड़ दें तो सफलता मिल जायेगी। किन्तु सत्याग्रही सत्य का त्याग नहीं करता। उसकी श्रद्धा ऐसे समय भी सूर्य के समान चमकती रहती है। सत्याग्रही निराश तो होता ही नहीं। उसके पास सत्य की तलवार होती ही है, इसलिए उसे लोहे की तलवार, गोला-बारुद की आवश्यकता नहीं होती। वह आत्मबल या प्रेम से शत्रु को भी अपने वश में कर लेता है। मित्रमण्डली में प्रेम की कसौटी नहीं होती। यदि मित्र मित्र पर प्रेम करे तो इसमें कोई नवीनता नहीं है। वह गुण नहीं है, उसमें श्रम नहीं है। परन्तु शत्रु के प्रति मित्रता रखने में प्रेम की कसौटी है। उसमें गुण है, श्रम है, इसी में पुरुषार्थ है और इसी में सच्ची बहादुरी है। शासनकर्ताओं के प्रति भी हम ऐसी दृष्टि रख सकते हैं। ऐसी दृष्टि रखने से हम उनके अच्छे कार्यों का मूल्य आँक सकते हैं और उनकी भूलों के लिए द्वेष करने के बजाय प्रेमभाव से वे भूलें बता कर उन्हें तुरन्त दूर करने में समर्थ होते हैं। इस प्रेमभाव में भय को कोई स्थान नहीं है। निर्बलता तो उसमें हो ही नहीं सकती। निर्बल मनुष्य प्रेम नहीं कर सकता, प्रेम तो शूर ही दिखा सकते हैं। प्रेम की दृष्टि से विचार करें तो हमें अपने शासनकर्ताओं को सन्देह की दृष्टि से नहीं देखना चाहिए और यह नहीं मानना चाहिए कि वे सब काम बुरी नियत से ही करते हैं। हमारे द्वारा प्रेमपूर्वक की हुई उनके कार्यों की परीक्षा इतनी शुद्ध होगी कि उनके ऊपर उसकी छाप पड़े बिना नहीं रहेगी।

प्रेम लड़ सकता है। प्रेम को कितनी ही बार लड़ना पड़ता है। सत्ता के मद में मनुष्य अपनी भूलों को नहीं देखता। इस समय सत्याग्रही बैठा नहीं रहता। वह स्वयं दुःख सहन करता है। सत्ताधीश की आज्ञा—उनके कानूनों—का सादर निरादर करता है और उस निरादर के परिणाम-स्वरूप होनेवाले कष्ट—जेल, फांसी इत्यादि सहन करता है। इस प्रकार आत्मा उन्नत होता है।

इस प्रकार विवेकपूर्वक किये गये निरादर में यदि बाद में भूल प्रतीत हो तो इस भूल का परिणाममात्र सत्याग्रही और उसके साथियों को सहन करना पड़ता है। इसमें सत्ताधीश से अनबन नहीं होती। बल्कि अन्त में वे सत्याग्रही के वश में हो जाते हैं। वे समझ लेते हैं कि सत्याग्रही के ऊपर हमारा शासन नहीं चल सकता। सत्याग्रही की सम्मति और इच्छा के बिना वे एक भी काम उससे नहीं ले सकते।

३-११-'१७ —मो० क० गांधी

www.vinoba.in

अब वर्ण-संघर्ष !

लखनऊ के एक सम्मेलन में अल्पसंख्यकों का एक संघ बनाने की बात हुई है। भारत के संविधान में किसी को भी संघटन करने और संघ बनाने का अधिकार है। यों भी जब चुनाव करीब होते हैं तो बहुत से नये संघ बनते हैं और बाद को टूट जाते हैं। लेकिन लखनऊ के सम्मेलन में महत्त्व की बात यह है कि मुसलमानों, पिछड़ी जातियों, हरिजनों, आदिवासियों और ईसाइयों की यह नयी सम्मिलित शक्ति सवर्ण हिन्दुओं के जुल्मों का मुकाबिला करने के लिए संघटित की जा रही है। सम्मेलन में सवर्ण हिन्दुओं को तो जालिम के रूप में प्रस्तुत किया ही गया, हिन्दूधर्म और उसके देवी-देवताओं को, यहाँ तक कि ईश्वर को भी, निन्दा भरे शब्दों में अस्वीकार किया गया। अन्त में, जैसा हमेशा होता है, ६ नये राज्यों की माँग की गयी जिनमें इन अल्प मतवालों का बहुमत हो। भारत के राजनीतिक मंच पर उतरनेवाले हर नये 'नेता' का यह विश्वास बन गया है कि अमृतधारा की तरह अलग राज्य का बन जाना जनता के अस्सी रोगों की एक ही अचूक दवा है !

यह बात विवाद की नहीं है कि भारत में जितने लोग रहते हैं वे सब भारत के नागरिक हैं, और सब समान हैसियत और अधिकार के हैं। सबको समान सामाजिक संरक्षण तथा तुल्य पारिश्रमिक मिले, इस तरह की समाज-व्यवस्था और राज-व्यवस्था होनी चाहिए। जाहिर है कि अभी देश में राज्य और समाज की ऐसी क्या, इससे मिलती-जुलती भी व्यवस्था नहीं बन सकी है।

हम मानते हैं कि हमारे देश की मुख्य समस्या गरीबी से बढ़कर विषमता है। हम कितनी भी कोशिश करें, हर भारतीय नागरिक को सभ्य जीवन के आवश्यक सामान भरपूर मात्रा में निकट भविष्य में नहीं मिल सकते। आर्थिक विकास समय लेता है। लेकिन निश्चित ही सामाजिक संरक्षण और तुल्य पारिश्रमिक की दिशा में ठोस कदम उठाकर ऐसी स्थिति जल्द-से-जल्द पैदा की जा सकती है जिससे लोक-मानस को समाधान हो। देश में गरीबी है तो देशवासियों में गरीबी का तुल्य बँटवारा होना चाहिए !

लेकिन दुःख है कि पिछले इक्कीस वर्षों में हमारी राजनीति इस तरह विकसित हुई है कि वह सामान्य जनता की समस्याओं से अलग हो गयी है। वस्तुतः हमारी राजनीति नेताओं के हाथ का खेल बन गयी है। अब जनता समझने लगी है कि सत्ता के लिए होने वाले खेल से जीवन की समस्याएँ हल नहीं होंगी। हरिजन या मुस्लिम बहुमत का एक राज्य बन जाय जिसमें हरिजन या मुसलमान नेता, मिनिस्टर और अधिकारी बन जायँ तो क्या करोड़ों गरीब और शोषित हरिजनों और मुसलमानों की समस्याएँ हल हो जायँगी ? सामाजिक, सांस्कृतिक, और आर्थिक क्रान्ति की क्या योजना है इन नेताओं के पास, जो नये राज्यों की माँग कर रहे हैं ? शायद क्रान्ति और समाज-परिवर्तन के संदर्भ में वे सोचते ही नहीं। उनकी प्रेरणा स्वार्थ और बदले की है, नया समाज बनाने की नहीं।

क्या सम्प्रदायवाद का उत्तर सम्प्रदायवाद और जातिवाद का उत्तर जातिवाद है ? क्या अवर्णों का जातिवाद सवर्ण हिन्दुओं के जातिवाद से अच्छा होगा ? क्या हिन्दू सम्प्रदायवाद मुस्लिम सम्प्रदायवाद से, या मुस्लिम सम्प्रदायवाद हिन्दू सम्प्रदायवाद से ज्यादा प्रगतिशील है ? कितनी विचित्र बात है कि हम एक नये जातिवाद की सृष्टि द्वारा प्रचलित जातिवाद के जहर को समाप्त करने की कोशिश कर रहे हैं। यह सब पुरानी बोतल में नयी शराब भरकर उसे शर्बत का नाम देने का कौतुक है !

जो हमारे ऊपर जुल्म कर रहे हैं उनपर हम जुल्म कर लें तो हमारी प्यास बुझ जायगी। लेकिन क्या हम यह नहीं जानते कि आज के समाज में सवर्ण हिन्दू द्वारा सवर्ण हिन्दू का, हरिजन द्वारा हरिजन का, और मुसलमान द्वारा मुसलमान का उसी तरह शोषण होता है जैसे एक का गैर द्वारा। यह हो सकता है कि दूसरे से लड़ने के लिए जाति और सम्प्रदाय का जादू चल जाय। लेकिन किसी समुदाय को अल्पसंख्यक या बहुसंख्यक बना देने से ही बुनियादी सवालों का जवाब कैसे मिल जायगा ?

हम चाहते हैं—शोषणमुक्ति और समानता या संघर्ष और देश का विघटन ? बात यह है कि हमारी राजनीति में कोई ऊँचे मूल्य नहीं रह गये हैं। उसका एक ही भगवान है, और वह है सत्ता ! और, जिस जनता के नाम में राजनीतिक नेता बोलने की कोशिश कर रहे हैं वह अभी पूरी जगी नहीं है। वह नहीं समझ रही है कि किस तरह उसके क्षोभों और असंतोषों को उभाड़कर मध्यम वर्ग की राजनीति अपना उल्लू सीधा करती है। गरीबी और विषमता की न कोई जाति होती है, न सम्प्रदाय। हर जाति में गरीब हैं, शोषित हैं। गरीबी के नाम में गरीबों को जातिवाद के झंडे के नीचे खड़ा करने की कोशिश छिपे तौर पर आज के सामाजिक ढाँचे को कायम रखने की कोशिश है। जब तक जनता का दिमाग जाति और सम्प्रदाय के फंदों में जकड़ा रहेगा तब तक उसमें क्रान्ति की चेतना नहीं घुस सकेगी।

क्रान्ति दलगत राजनीति का विषय नहीं है। जरूरत है नये सामाजिक सम्बन्धों और नयी योजना की, जिसमें सबके लिए जीविका का रास्ता खुल सके। यह काम लखनऊ में दिये गये आगभरे भाषणों से नहीं होगा; होगा गाँव-गाँव की जनता को एकता और समता के लिए तैयार करने से। यह काम गर्म दिल और ठंढे दिमाग का है, न कि ठंढे दिल और गर्म दिमाग का। लेकिन नेता तो वोट लेगा गाँवों में, 'क्रान्ति' करेगा शहरों में ! •

www.vinoba.in

क्या संघर्षमुक्ति सम्भव है ?

प्रश्न : ग्रामदान में सह-अस्तित्व, समानता, सर्वांगीण विकास की भावना है। कम्युनिज्म का भी यही सिद्धान्त है। तो आज कम्युनिज्म की जो हालत हुई है—चेकोस्लोवाकिया पर रूस ने आक्रमण किया, वैसी हालत ग्रामदान के बावजूद भारत की नहीं होगी, उसके लिए क्या सबूत है ?

विनोबा : सवाल अच्छा है। ग्रामदान में सह-अस्तित्व, समानता, सर्वांगीण विकास की कल्पना है। कम्युनिज्म का भी वही सिद्धान्त है, यह मेरे लिए नयी चीज हो जाती है। सह-अस्तित्व कम्युनिज्म का सिद्धान्त नहीं है। उसमें एक वर्ग का सिर काटना और सिर काटकर बचे हुए लोगों में कम्युनिज्म की स्थापना करना, यह है। चीन में रेवोल्यूशन (क्रान्ति) हुई। मुझसे कहा गया कि उसमें १ करोड़ ७० लाख मालिकों के सिर काटे गये, चन्द महीनों के अन्दर। और उनकी जमीन लेकर भूमिहीनों में तुरन्त बाँटी गयी। ५ मनुष्य के एक परिवार के लिए लगभग १½ एकड़ जमीन। वह बाँटने के बाद जमीन वालों से कहा गया कि जिनको जमीन बाँटी गयी है, वे इकट्ठा खेती करें, 'कोआपरेटिव फार्मिंग' करें। प्रथम १ करोड़ ७० लाख के सिर काटे। यह जो 'नरकटियागंज' है, वह तो नाम ही है 'नरकटिया' लेकिन चीन में 'नरकटिया' हुआ। यहाँ अगर 'नरकटिया' होता तो यहाँ जो हजारों एकड़ जमीन बाहर के मालिकों के हाथ में है, वह नहीं रहती और बड़े-बड़े फार्म नहीं रहते। मालिकों के सिर कटते। अगर इस तरह जमीन और फार्म रहें, ऐसा चाहते हों, तो इसमें शक नहीं कि यहाँ भी मालिकों का 'नरकटिया' होकर रहेगा।

बाबा ने कई दफा कहा है कि बाबा उसको टालना चाहता है। लेकिन अगर न टलता हो, तो आज की परिस्थिति से बाबा उसे अधिक पसन्द करेगा। आज भारत जिस स्थिति में है, गाँव की जमीन मालिकों के कब्जे में, उससे बाबा बेहतर मानेगा कि उनके सिर कटें। आखिर सारे मरनेवाले तो हैं ही। तो आज की ही हालत रहती है भारत में, तो बाबा पसन्द करेगा कि मालिकों के सिर कटें और गरीबों को जमीन मिले। यह होकर रहेगा। भारत ने बीस साल स्वराज्य का अनुभव लिया। उसके बाद अगर भारत की स्थिति यही है तो इसके सिवा दूसरा रास्ता नहीं।

बड़े-बड़े जमीन-मालिक—फार्म के मालिक बाहर रहते हैं और उनके मैनेजर वगैरह बाबा का स्वागत करते हैं। बाबा को खिलाते-पिलाते हैं—'ब्राइब' (रिश्वत) देते हैं। यह खिलाना-पिलाना घूसखोरी है। इधर बाबा को तो खिलाते जाते हैं और उधर बाबा के काम का सख्त विरोध करते जाते हैं। बड़े-बड़े फार्म के लोगों ने ग्रामदान का सख्त विरोध किया है। फिर भी उनकी चली नहीं। अगर चलती, तो वे ग्रामदान में जमीन आने नहीं देते, उसकी मुखालिफत करते। यह साफ है कि हिन्दुस्तान में दिन-ब-दिन स्थिति कठिन होती जा रही है। और ये सोचते नहीं कि अगर इस तरह से मुखालिफत करते रहेंगे, तो नतीजा क्या आयेगा ? फिर वे सारे खतम हैं। इसलिए इसके आगे इस तरह 'ब्राइबिंग' चलेगी नहीं।

बाबा बेवकूफ नहीं, अगर बाबा को ठगने का प्रयत्न करते हो। बाबा जिस किसी घर में खाता है, बाबा समझता है कि वह भगवान का खाता है। जिस किसी घर में रहता है, समझता है, अपने ही घर में रहता है। जिस किसी घर में खाता है समझता है अपना ही खाता है। यह सारा मनु महाराज ने लिख रखा है—'स्वमेव ब्राह्मणो भुंक्ते, स्वं वस्ते, स्वं ददाति च'—ब्राह्मण दावा करता है कि ब्राह्मण अपना ही खाता है, अपना ही पहनता है, अपने ही घर में रहता है और जिस किसी की चीज उठाकर देगा, तो कहेगा, मेरा ही मैंने दिया। इसलिए बाबा जिस किसी के घर में खाता हो, उस घरवाले का कभी नहीं होगा। बाबा अपने पेट के लिए घूम नहीं रहा। वह लोक-प्रतिनिधि होकर घूमता है। और लोकप्रतिनिधि के नाते कहता है, आप भारत में 'नरकटिया' न चाहते हों, तो फार्म का भी हिस्सा ग्रामदान में दे देना चाहिए।

देना भी क्या होता है ? बाबा केवल बीसवाँ हिस्सा माँगता है। ५०० एकड़ का बीसवाँ हिस्सा यानी २५ एकड़ जमीन देनी होगी। बाकी जमीन उन्हीं के पास रहेगी। और उसकी आमदनी का चालीसवाँ हिस्सा हर साल गाँव-सभा को गाँव के काम के लिए देना, और जमीन की मालिकी गाँव-सभा के नाम पर करना। गाँव-सभा की सम्मति के बिना जमीन बेची नहीं जायेगी; विरासत का और काश्त का अधिकार आपके हाथ में रहेगा। केवल जमीन बेचने का अधिकार रहेगा नहीं।

जमीन बेचने का अधिकार तो जमीन खोने का अधिकार है। अभी इस गाँव में दो हजार एकड़ के मालिक बाहर के हैं। कइयों ने बड़ी कुशलता से जमीन खरीदी है। इस वास्ते जमीन बेचने का अधिकार यानी जमीन खोने का अधिकार।

इतना सादा फार्मूला है। इसमें सह-अस्तित्व है। सारा गाँव एक परिवार समझ-कर एक दूसरे से प्यार करे और परिवार के अन्दर जो भावना रहती है, वह गाँव के अन्दर रहे। कम्युनिज्म में सह-अस्तित्व है नहीं। दोनों की तुलना हो नहीं सकती। कम्युनिज्म मे स्टेट ओनरशिप है। इसलिए वहाँ सरकार सर्वेसर्वा रहेगी। ग्रामदान में मालिकी ग्रामसभा की रहेगी। गाँव सर्वेसर्वा

रहेगा। इसलिए चेकोस्लोवाकिया में जो हुआ, वह ग्रामदान में नहीं होगा। कम्युनिज्म की अच्छाई इसमें है और कम्युनिज्म के दोष इसमें टाले हैं।

अब, यह भी सोचने की बात है। भारत सारा एक है। रूस छोड़ दें तो सारा योरप भारत के बराबर है। आज योरप में एक-एक भाषा का एक-एक देश है, अलग-अलग। हर देश की अपनी सीमा है। सेना है। एक देश से दूसरे देश में जाने के लिए वीसा लेना पड़ता है। सारा योरप तो क्या, आधे योरप में भी कामन-मार्केट नहीं। भारत में क्या है? यहाँ ये लोग बैठे हैं—सोमानी, वियानी, ये सारे राजस्थान से यहाँ आये हैं। १२०० मील दूरी से। १२०० मील का दूरी यानी लन्दन से मास्को की दूरी। हिन्दुस्तान में कामन-मार्केट है। यह सहूलियत भारत में है। तो समझना चाहिए कि हमारा दिल भी बड़ा होना चाहिए। भारत के लायक। जहाँ भी जायेंगे, लूटने के लिए नहीं जायेंगे, सेवा के लिए जायेंगे, तो आप लोकप्रिय होंगे। इसलिए ये दिन अब गये कि इधर से उधर जाकर कब्जा करें। और वे दिन नजदीक हैं, जिसकी वार्निंग नक्सलबाड़ी ने आपको दी है।

मैं नक्सलबाड़ी के नजदीक गया था। वे लोग मुझसे मिलने के लिए आये थे। मैंने उनसे कहा, तुम बेवकूफ हो। तुम लोग अगर सफल होते हो बड़े लोगों के सिर काटकर अपना राज बनाने में, तो बाबा तुम्हारा विरोध करेगा नहीं। लेकिन तुम लोग सफल होगे नहीं। क्योंकि तुम बेवकूफ लोगों ने वोट देकर सरकार बना रखी है और उसके हाथ में सेना दे रखी है। और अपने हाथ में धनुष-बाण रखा है। उधर उनको सेना रखने का अधिकार देंगे और इधर छुरी से क्रान्ति करेंगे? वह होगी नहीं। सेना से वह दबायी जायेगी। इसलिए क्रान्ति करनी हो, तो सेना में बगावत होनी चाहिए और बाहर से मदद आनी चाहिए। आज की हालत में आपकी खूनी क्रान्ति सफल नहीं होगी। इसलिए तुम जो काम कर रहे हो, उसको मैं मूर्खता मानता हूँ। लेकिन वह कहाँ तक समझाओगे?

भारत में पण्डित नेहरू जैसा नेता नहीं मिलेगा, जिसकी दुनिया भर में ताकत थी। आज की हालत में दुनिया पर असर डालने वाला नेता आपका रहा नहीं। ऐसी हालत में केन्द्रीय सरकार बोझ बन सकती है। और प्रान्तों के तो हाल ही मत पूछो। बिहार में क्या हुआ? सरकार ही टिक नहीं सकी। सबने मिलकर सरकार को गिरा दिया—हटा दिया। सब जगह यही देखा।

ऐसी हालत में मालिकों से प्रार्थना है कि कृपा करके ग्रामदान में शामिल हो जायँ, जल्द-से-जल्द। इसमें खोने का है बहुत कम और पाने का है बहुत! उससे प्रतिष्ठा मिलेगी और प्रेम मिलेगा। अगर जरा व्यापारी अक्ल हो, व्यावहारिक अक्ल हो, तो यह ध्यान में आयेगा।

चेकोस्लोवाकिया में जमीन की मालिकी सारी सरकार के हाथ में है। सेना आयी, तो सारे गुलाम बन गये। यहाँ एक-एक गाँव स्वतंत्र किला बनेगा। किसी को भारत पर कब्जा करना हो, तो एक-एक गाँव पर कब्जा करना होगा। दिल्ली पर कब्जा करके नहीं होगा। यहाँ तो एक-एक गाँव अपने पाँव पर खड़ा होगा। हर गाँव 'रिपब्लिक' होगा—'सर्वोदय रिपब्लिक।' इसलिए जो हालत चेकोस्लोवाकिया की हुई, वह यहाँ नहीं होगी। रूस में क्या हुआ? बुलगेनिन गया, ख्रुश्चेव आया, ख्रुश्चेव गया, कोसीगिन आया, वह गया, वह जायेगा। यह सिलसिला ग्रामदान में नहीं चल सकता। यह समझने की बात है। इसलिए आप लोग जितनी जल्दी इसमें शरीक हो सकते हैं, हो जायँ, ऐसी आपके चरणों में बाबा की नम्र प्रार्थना है।

प्रश्न : प्राकृतिक नियमानुसार पृथ्वी पर युद्ध का अन्त नहीं हुआ है। आप कैसे सोचते हैं कि युद्धमुक्त दुनिया बनेगी?

विनोबा : ये कहना चाहते हैं कि आप मानव-स्वभाव के विरुद्ध अपेक्षा कर रहे हैं। आज सायन्स बढ़ गया है। सायन्स ने ऐसे शस्त्रों की उत्पत्ति की है कि अगर आप शस्त्रों का आधार लेते हैं, तो मानव-जाति का संहार होगा।

सायंस ने ऐसे शस्त्र पैदा किये हैं कि जिसमें मानव-जाति के संहार की शक्यता है। इसके पहले ऐसा नहीं था। पहले धनुष-बाण था, उसके बाद बन्दूकें निकलीं, तोपें निकलीं, अब आटोमेटिक बैलेस्टिक वेपन निकले हैं। उससे सब खतम होगा। बम डालने के लिए उस देश में जाने की जरूरत नहीं। अपने स्थान में बैठकर शान्त ढंग से, ऐंगल ठीक करके डालेंगे, तो ठीक निश्चित जगह पर बम पड़ेगा। वैसी कुशलता प्राप्त हुई है शस्त्रों में। यह हिंसा नहीं है, संहार है। संहार और हिंसा में फरक है। संहार परमेश्वर का कार्य है। परमेश्वर सृष्टि की हिंसा नहीं करता, संहार करता है। आणविक शस्त्र हिंसा-शक्ति नहीं, संहार-शक्ति है। मानव जाति का उसमें संहार है। तो मानव उससे डर रहा है। वह चाहता है कि इस शस्त्र का उपयोग न हो। तो बाबा जो कह रहा है, शस्त्रमुक्त, संघर्षमुक्त दुनिया बन रही है, यह प्राचीनों की भी इच्छा थी, लेकिन सफल नहीं हुई, क्योंकि उस समय सायंस नहीं आया था। हिंसा के साथ उसकी प्रतिक्रिया भी साथ जाती है। जहाँ विश्व-संहार की शक्ति हाथ में आयी, वहाँ क्रिया भी गयी और प्रतिक्रिया भी गयी। इसलिए या तो आप संघर्ष खतम करें या संहार के लिए तैयार रहें। यह आलटरनेटिव (विकल्प) सायन्स ने पैदा किया है। इसलिए बाबा आशा करता है कि संघर्षमुक्त समाज बनेगा। पहले मानव भी रहता था और हिंसा भी रहती थी। अब, या तो मानव नहीं रहेगा, या वह संघर्षमुक्त रहेगा।

[नरकटियागंज, जिला चम्पारन की चीनी मिल में ता० २-९-'६८ की हुई चर्चा से।]

पठनीय **नयी तालीम** मननीय
शैक्षिक क्रांति की अग्रदूत मासिकी
वार्षिक मूल्य : ६ रु०
सर्व सेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी—१

क्या व्यक्तिगत मुनाफे की प्रेरणा के बिना उद्योग सफल हो सकता है ?

www.vinoba.in

• उद्योग या व्यापार केवल व्यक्तिगत मुनाफे का साधन नहीं है उसका सामाजिक उत्तरदायित्व है।

• व्यक्ति और समाज ये दो परस्पर विरोधी नहीं बल्कि पूरक तत्त्व हैं, एक के बिना दूसरे का अस्तित्व भी असम्भव है। इसलिए दोनों के हितों का समन्वय न सिर्फ सम्भव है बल्कि वही समाज-रचना का एकमात्र वैज्ञानिक और स्थायी आधार हो सकता है।

— सिद्धराज ढड्ढा

आजकल कई देशों में, जिनके लिए अक्सर "आजाद-समाज-व्यवस्थावाले मुल्क" का गलत विशेषण प्रयुक्त किया जाता है लेकिन जिन्हें वास्तव में पूँजीवादी देश कहना चाहिए, उद्योग और व्यापार व्यक्तिगत मुनाफे की चीज समझी जाती है। यह माना जाता है कि अगर व्यक्तिगत मुनाफे की प्रेरणा (इन्सेन्टिव) न हो तो व्यक्ति ठीक से काम नहीं करेगा और उद्योग-व्यापार कुशलता से नहीं चलाये जा सकेंगे। इसलिए व्यक्तिगत मुनाफे की वृत्ति को प्रोत्साहन देना अच्छा समझा जाता है और उसके अधिकार को सर्वोच्च माना जाता है। परिस्थिति के या अन्य किसी प्रकार के दबाव से इस अधिकार पर कोई नियंत्रण स्वीकार करना ही पड़े तो उसे एक अनिवार्य बुराई समझकर बर्दाश्त किया जाता है। इसकी प्रतिक्रिया के रूप में दूसरे छोर पर यह मान्यता है कि समाज-हित सर्वोपरि है और उसके लिए व्यक्ति के हितों और उसके स्वातंत्र्य तक की बलि जायज है। परिणाम-स्वरूप लोग ऐसा समझते हैं कि व्यक्ति और समाज ये दो परस्पर विरोधी तत्त्व हैं और इसलिए या तो अनियंत्रित व्यक्तिवाद या सामाजिक हित के नाम पर व्यक्ति के हितों और उसके स्वातंत्र्य तक का अपहरण, यही दो विकल्प समाज-व्यवस्था के लिए हैं।

भारतीय समाजशास्त्रियों ने इन दोनों दृष्टिकोणों के समन्वय के आधार पर एक तीसरा विकल्प प्रस्तुत किया था। जीवन की हर क्रिया को उपासना का रूप देकर और हर काम के साथ सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना जोड़कर व्यक्तिगत स्वार्थ को मर्यादा में रखने और व्यक्ति तथा समाज के हितों में सामंजस्य बिठाने की कोशिश की गयी थी। वास्तव में इस प्रकार के सामंजस्य के अलावा जीवन का दूसरा आधार हो भी नहीं सकता क्योंकि व्यक्ति और समाज परस्पर पूरक हैं, एक के बिना दूसरे का अस्तित्व भी असम्भव है। इसलिए दोनों के हितों का समन्वय न सिर्फ सम्भव है बल्कि समाज-रचना का वही एकमात्र श्रेयस्कर वैज्ञानिक और स्थायी आधार हो सकता है। इस तथ्य को यहाँ के समाजशास्त्रियों ने पहचाना था इसीलिए यहाँ की समाज-रचना हजारों बरस टिकी रह सकी।

पर यह सब तो पुरानी बात हो गयी। दुर्भाग्य से भारत भी आधुनिक प्रवाह से बच नहीं सका। यहाँ भी आज व्यक्तिवाद का प्रभुत्व है—सारी रचना, मान्यताएँ और मूल्य व्यक्तिगत स्वार्थ को प्रोत्साहन देनेवाले हैं। यहाँ भी आज उद्योग-व्यापार को केवल व्यक्तिगत मुनाफे का साधन माना जाने लगा है। अगर इनका कोई सामाजिक उत्तरदायित्व है भी तो वह परोक्ष और गौण वस्तु है, ऐसी आज की मान्यता बन गयी है। इसलिए एक तरफ तो व्यक्ति के अमर्यादित अधिकार की दुहाई दी जा रही है और दूसरी तरफ जनता में वही पुरानी भ्रान्ति खड़ी की जा रही है कि व्यक्ति और समाज के हित परस्पर विरोधी हैं और इन दोनों के बीच शासन और कानून की सत्ता ही सन्तुलन कायम रख सकती है। इसे समाजवाद का नाम दिया जाता है पर वास्तव में इसका उपयोग भी अधिकतर व्यक्तिगत, पार्टीगत या वर्गगत स्वार्थसाधन में ही किया जा रहा है।

क्या आधुनिक संदर्भ में सामंजस्य का कोई नया तरीका नहीं निकाला जा सकता ? जिस तरह ग्रामीण संदर्भ और भूमि-व्यवस्था के क्षेत्र में ग्रामदान के जरिये व्यक्ति स्वातंत्र्य और सामूहिक उत्तरदायित्व का समन्वय बिठाया गया है उसी तरह उद्योग-व्यापार के क्षेत्र में क्या सामाजिक उत्तरदायित्व का तत्त्व दाखिल नहीं किया जा सकता ? अगर मुनाफे की प्रेरणा न हो तो व्यक्तियों के लिए ऐसे उद्योगों में 'इन्सेन्टिव' क्या होगा ? ऐसे उद्योगों की व्यवस्था किस प्रकार की होगी ? आदि कई प्रश्न इस सन्दर्भ में खड़े होते हैं।

अभी हाल ही में अंग्रेजी के बहुपठित मासिक "रीडर्स डायजेस्ट" के अगस्त के अंक में नार्वे के एक प्रयोग का वर्णन छपा है। नार्वे के सबसे बड़े इलक्ट्रॉनिक कारखाने "टेडियोफैब्रिक्स" की यह कहानी एक "सामाजिक" उद्योग कैसा होना चाहिए इसका प्रेरणादायी उदाहरण है। कारखाने के संचालक, ६३ वर्षीय बेनजोर्न टैंडबर्ग शुरू से ही इस कारखाने के "प्राण" रहे हैं, उन्होंने इस उद्योग के सतत् विकास की दृष्टि से इसे एक ट्रस्ट का रूप दिया है, पर जिस तरह आजकल टैक्स बचाने की नीयत से उद्योगों के ट्रस्ट बनाये जाते हैं उस प्रकार का यह ट्रस्ट नहीं है। टैंडबर्ग के इस कारखाने का उद्देश्य "चेरीटेबल"—परोपकारी नहीं है, लेकिन कारखाने के विधान के अनुसार इसका तमाम मुनाफा उद्योग में अन्वेषण तथा विकास के लिए अंकित है। इस उद्योग संस्थान का एकमात्र उद्देश्य कारखाने में काम करनेवाले लोगों की भलाई के साथ-साथ अधिक उत्पादन तथा लोगों के लिए अधिक काम मुहैया करना है। इस कम्पनी के कुल पाँच हजार शेयर में से ४९९८ का ट्रस्ट कर दिया गया है, शेष एक शेयर टैंडबर्ग के नाम है और दूसरा उनके एक साथी के नाम, क्योंकि नार्वे के कानून के अनुसार किसी भी कम्पनी में कम-से-कम तीन हिस्सेदार होना जरूरी है।

नार्वे में रिसर्च यानी अनुसन्धान का खर्च टैक्स से बरी है, लेकिन कुल आमदनी के सिर्फ छः प्रतिशत तक। इसलिए टैंडबर्ग का कारखाना अन्य किसी भी उद्योग की भाँति पूरा टैक्स देता है। वास्तव में रेडियो, टेलि-

www.vinoba.in

विजन सेट, टेपरेकार्डर, माइक्रोफोन आदि का निर्माता और साढ़े बारह करोड़ "क्राउन" (नार्वे का सिक्का) का सालाना कारोबार करनेवाला अपनी लाइन में नार्वे का यह बड़ा कारखाना काफी मात्रा में टैक्स देनेवाली कम्पनियों में से एक है।

टैंडबर्ग, जो इस कारखाने के संचालक हैं, उनका वेतन उनके खुद के शब्दों में "किसी भी तत्सम कम्पनी के संचालक को जो मिलता है उसके बारबार है," और हालाँकि टैंडबर्ग अभी भी इस उद्योग का संचालन उसी प्रकार करते हैं जैसे वे स्वयं इसके मालिक हों, लेकिन वैधानिक दृष्टि से वे कम्पनी के पाँच सबसे ऊँचे अधिकारियों के मंडल के प्रति उत्तरदायी हैं। अगर इस मंडल को यह लगे कि टैंडबर्ग काम बिगाड़ रहे हैं तो वे अपनी शिकायत 'पंच' के सामने पेश कर सकते हैं जो मामले की जाँच करेगा और जिसे विधान के अनुसार यह अधिकार प्राप्त है कि वह टैंडबर्ग को हटा दे। लेकिन अभी तक ऐसा मौका नहीं आया है, क्योंकि कम्पनी का काम उत्तरोत्तर तरक्की ही कर रहा है। इसके अलावा टैंडबर्ग के संचालन में इस "फाउंडेशन" ने अपने कर्मचारियों के हित में इतना काम किया है कि उन लोगों की इच्छा तो यही है कि टैंडबर्ग अपने पद पर कायम रहें।

इस कारखाने में काम करनेवालों के वेतन और मजदूरी तो उतने ही हैं जितने दूसरे कारखानों में, लेकिन इसमें काम करने वालों को अन्य कई लाभ मिल जाते हैं। सन् १९३७ में जबकि नार्वे के सब कारखानों में ४८ घण्टे प्रति सप्ताह काम होता था, टैंडबर्ग ने काम के घण्टे ४२ करा दिये थे और कुछ वर्ष बाद ये घण्टे घटाकर ३९ कर दिये थे, जो अभी कायम हैं। कारखाने के हर कर्मचारी को साल में कम-से-कम साढ़े चार सप्ताह की छुट्टी मिलती है, अधिक उम्रवालों को उत्तरोत्तर अधिक। काम से अवकाश देने की आयु-मर्यादा यहाँ ६७ है जबकि देश के अन्य सब उद्योगों में ७०। बीमारों के अवकाश का भत्ता वेतन का ९० प्रतिशत तक है जो कि सब कारखानों से ऊँचा है। बीस साल पहले टैंडबर्ग ने कम्पनी में काम करने वालों के लिए कम्पनी के खर्चे पर विदेश-यात्रा का क्रम जारी किया था। गत वर्ष कम्पनी के खर्चे से १०० लोग विदेश गये थे। वे केवल देश-दर्शन या सैर ही नहीं करते बल्कि विदेशों में तत्सम् कारखानों का अवलोकन भी करते हैं और अक्सर अपने कारखाने के लिए नयी-नयी सूझ-बूझ लेकर आते हैं। इस प्रकार ये यात्राएँ कारखाने के लिए भी लाभदायक साबित हो रही हैं।

इस उद्योग के संचालन में एक विशेषता यह है कि कारखाने के तमाम पद कारखाने के कर्मचारियों में से ही तरक्की के द्वारा भरे जाते हैं। कारखाने के एक अफसर ने कहा कि 'टैंडबर्ग जब किसी होनहार नौजवान को देखता है तो वह उसे रात्रि-पाठशाला में जाने के लिए प्रेरित करता है। होनहार नौजवान अपना शिक्षण जारी रखें इस बारे में टैंडबर्ग करीब-करीब 'फैनेटिकल' आग्रही हैं।

एक बार रूस के तत्कालीन उपप्रधान-मंत्री मिकोयान नार्वे की यात्रा पर आये और इस कारखाने को देखकर उन्होंने टैंडबर्ग से पूछा, "यह कम्पनी पूँजीवादी ढंग पर चलायी जा रही है या साम्यवादी ?" टैंडबर्ग ने जवाब दिया, "यह दोनों के बीच की चीज है, कम्पनी अपनी खुद मालिक है।" मिकोयान यहाँ की व्यवस्था से इतने प्रभावित हुए कि मास्को लौटने पर उन्होंने अपने कई उच्चस्तरीय साथियों से उसका जिक्र किया।

नार्वे का यह कारखाना आज इस क्षेत्र के दुनिया के विशालकाय संस्थान जैसे 'फिलिप्स, गुंडिग, जनरल इलेक्ट्रिक और सोनी' से सफलतापूर्वक मुकाबिला कर रहा है। टैंडबर्ग की सफलता उसकी चीजों की क्वालिटी पर निर्भर है। इस कारखाने की सफलता इस बात को सिद्ध करती है कि कुशलता, गुण, सामाजिक न्याय आदि के आधार पर अपेक्षाकृत छोटा कारखाना भी भीमकाय संस्थानों का मुकाबिला कर सकता है। टैंडबर्ग स्वयं एक अच्छे ध्वनि इंजीनियर थे। शुरू में उन्होंने उत्तम लाउडस्पीकर बनाये और उनके मुनाफे से फिर रेडियो बनाने की कम्पनी खोली। सन् १९३९ में उनके कारखाने में १०० लोग काम करते थे, जिनमें से करीब-करीब सबने उसी कारखाने में ट्रेनिंग पायी थी। जाहिर है कि इस काम में समय और शक्ति का काफी विनियोग (इन्वेस्टमेंट) हुआ था। अपने इन साथियों की भलाई का खयाल करके टैंडबर्ग ने कारखाने की मालकियत को ट्रस्ट के रूप में परिवर्तित कर दिया और कारखाने में एक ऐसी पेन्शन-व्यवस्था चालू की जो असाधारण है। वह व्यवस्था यह है कि काम से अवकाश प्राप्त होने पर कर्मचारी को वेतन की ९० प्रतिशत पेन्शन मिलती है और इसके लिए टैंडबर्ग ने अलग से कोई सुरक्षित कोष भी नहीं रखा है, बल्कि कारखाने के चालू मुनाफे में से ही पेन्शन की रकम दी जाती है। टैंडबर्ग का मानना है कि इस काम के लिए अलग से कोष स्थापित करने की कोई आवश्यकता नहीं है। आज जो रकम कोष में रखी जाये उसका मूल्य तो मुद्रा-स्फीति के कारण उत्तरोत्तर कम ही होनेवाला है। इसलिए अर्जित पूँजी को किसी कोष में न बाँधकरके विकास में लगाना और उससे उत्तरोत्तर अधिक लाभ कमाना ज्यादा फायदेमन्द है। उद्योग के विकास से जो मुनाफा बढ़ता है उसमें से पेन्शन देना भारी नहीं पड़ता, और न अन्य साधारण पेन्शन योजनाओं की तरह कर्मचारी पर इसका कोई बोझ पड़ता है।

टैंडबर्ग उद्योग-व्यवस्था की अपनी योजना के बारे में बहुत आशान्वित हैं। उनका कहना है कि भविष्य में इस प्रकार के ट्रस्ट-चालित उद्योग, जिनका मुनाफा केवल अनुसन्धान और विकास में काम आये, दुनिया की अर्थ-रचना के स्थायी अंग हो जायेंगे।

• व्यक्ति और समाज के हित परस्पर विरोधी हैं तथा इन दोनों के बीच शासन और कानून की सत्ता ही सन्तुलन कायम रख सकती है— यह एक ऐसा भ्रम है जो सत्ता के जरिये स्वार्थ-सिद्धि चाहनेवाले लोगों द्वारा फैलाया जाता है। इसे समाजवाद का नाम दिया जाता है पर वास्तव में इसका उपयोग व्यक्तिगत, दलगत या वर्गगत स्वार्थ-साधन में किया जा रहा है।

www.vinoba.in

वारसा-सन्धि के देशों में विरोध-प्रदर्शन

अन्तरराष्ट्रीय शान्ति-आन्दोलन का एक महत्त्वपूर्ण प्रयास

[सर्वोदय का नारा है जय-जगत; क्योंकि इस विज्ञान के युग में सम्पूर्ण जगत ही एकमात्र मानवनिष्ठ इकाई बन सकता है। हितों के घरौंदों और हृदय की संकीर्णताओं के दिन लद गये। तभी तो चेकोस्लोवाकिया की घटना से दुनिया भर में एक मंथन पैदा हो गया है, और शान्ति की एक नयी लोकशक्ति का आभास भी हुआ है। इसका एक उत्तम उदाहरण है अन्तरराष्ट्रीय युद्ध-विरोधी संघ द्वारा किया गया यह प्रयास, जिसका विवरण भेजा है इस संघ के मंत्री श्री देवी प्रसाद की सहधर्मिणी श्रीमती जानकी देवी प्रसाद ने सीधे इंगलैंड से।— सं०]

गत २१ अगस्त '६८ को रूस तथा वारसा-सन्धि के उसके साथी—पोलैण्ड, हंगरी, बुलगेरिया और पूर्वी जर्मनी की सेनाओं ने चेकोस्लोवाकिया के ऊपर चढ़ाई कर दी, उस देश के प्रमुख नेताओं को गिरफ्तार किया और वहाँ एक कठपुतली-सरकार स्थापित करने का प्रयत्न किया। पिछले कुछ महीनों से चेकोस्लोवाकिया में लोकतंत्रात्मक व्यवस्था और विचार-स्वातंत्र्य की तरफ ज्यादा झुकाव हो रहा था, जिसको प्रतिक्रियावादी कहकर उसके दमन के लिए रूस ने यह कदम उठाया था। चेकोस्लोवाकिया के लिए इस आक्रमण का सशस्त्र प्रतिकार करना असम्भव था, लेकिन वहाँ के लोगों ने अद्भुत बहादुरी के साथ आक्रमण के प्रति अपना विरोध दिखाया और उसके सामने सिर झुकाने से इनकार किया। हमारे एक मित्र और साथी, अमेरिका के "वार रसिस्टर लीग" के मंत्री, डेविड मकरेनाल्ड उस रात को प्राग में थे। उन्होंने अपनी आँखों देखी बात यह बतायी कि हजारों साधारण नागरिक बिलकुल निहत्थे, बिना डर के, रूस के टैंकों के सामने चले जाते थे और सिपाहियों से पूछते थे 'क्यों यहाँ आये हो भाई, हमें आप लोगों की जरूरत नहीं है।' सिपाही लज्जित होते थे। असल में उन्हें भी मालूम नहीं था कि उन्हें क्यों वहाँ भेज दिया गया। कई दफा तो भीड़ टैंकों के सामने खड़ी होकर उन्हें रोक देती थी। चेकोस्लोवाकिया की जनता का यह निःशस्त्र प्रतिकार वैचारिक दृढ़ता के कारण नहीं परिस्थिति-जन्य विवशता के ही कारण क्यों न हुआ हो, सैनिक-आक्रमण के सामने ऐसा व्यवहार अभूतपूर्व और अहिंसा के मार्ग में एक नयी रोशनी दिखाता है।

एकता और सहानुभूति की अनुभूति

दुनिया के शान्तिवादियों ने महसूस किया कि इस अवसर पर चेकोस्लोवाकिया की जनता के साथ अपनी एकता और सहानुभूति दिखाये बिना नहीं रहा जा सकता है। 'युद्ध-विरोधी अन्तरराष्ट्रीय संघ' ने इस ओर तुरन्त कदम उठाया। उन्होंने उचित यह माना कि आक्रमणकारी देशों की जनता को वस्तुस्थिति बताने का प्रयत्न किया जाय और उनसे सीधे अपील की जाय। इसके लिए उन पाँचों देशों की राजधानियों में एक-एक अन्तरराष्ट्रीय टोली भेजने की योजना बनी। काम बहुत बड़ा था, विभिन्न देशों के शान्तिवादी मित्रों के साथ विचार-विनिमय हुआ, सबका उत्साहपूर्ण समर्थन और सहयोग मिला।

प्रदर्शन की पूर्व तैयारी

कुछ व्यावहारिक व राजनैतिक कारणों से बाद में पूर्वी जर्मनी में जाने का खयाल छोड़ना पड़ा। रूस की राजधानी मास्को, पोलैंड की राजधानी वारसा, हंगरी की राजधानी बुडापेस्ट और बुलगेरिया की राजधानी सोफिया में जाने के लिए चार टोलियाँ तैयार हो गयीं। इंगलैंड, अमेरिका, इटली, जर्मनी, हालैण्ड, डेनमार्क और भारत से १६ युवक-युवतियाँ इस साहसपूर्ण कार्य के लिए प्रस्तुत हुए। वे सब ऐसे थे जो पहले भी अणुबम के निर्माण, नाटो, वियतनाम का युद्ध, आदि के प्रति अपना विरोध प्रकट कर चुके थे। उनका कार्यक्रम यह बनाया गया कि वे इन राजधानियों में जाकर वहाँ की जनता में एक निवेदन-पत्र बाँटें, और एक निश्चित मुहूर्त पर एक साथ विरोध-प्रदर्शन करें। अलग-अलग देशों में इन युवक-युवतियों से सम्पर्क स्थापित करना, उन्हें योजना बताना, उन-उन देशों में जाने के लिए वीसा वगैरह लेना, निवेदन-पत्र तैयार करना, यह सब बहुत सोच-समझ और मेहनत का काम था, जो 'युद्ध विरोधी अन्तरराष्ट्रीय संघ' के अध्यक्ष, मंत्री, तथा उनके साथी कई सप्ताह तक अविरत परिश्रम के साथ करते रहे।

विरोध और निवेदन

बहुत तैयारी के बाद २४ सितम्बर '६८ मंगलवार को चारो राजधानियों में निवेदन के परचे बाँटे गये और उस दिन शाम को एक ही वक्त इन शहरों में एक-एक मुख्य स्थानों पर विरोध-प्रदर्शन के रूप में एक 'बैनर' खोल दिया, जिसमें उन-उन देशों की भाषाओं में लिखा था—"नाटो को खतम करो, वियतनाम पर अमेरिका के आक्रामण को खतम करो, चेकोस्लोवाकिया पर आक्रमण खतम करो।" और उसी समय (मास्को में ६ बजे, लन्दन में ४ बजे, न्यूयार्क में सुबह के ११ बजे) लन्दन, न्यूयार्क, कोपनहेगन और रोम में अन्तरराष्ट्रीय संवाददाताओं, समाचार-पत्रों तथा रेडियो-टेलीविजनों को यह खबर बतायी गयी कि वारसा-सन्धि के देशों में चार अन्तरराष्ट्रीय टोलियाँ निवेदन-पत्र बाँटकर चेकोस्लोवाकिया पर हुए आक्रमण के प्रति विरोध-प्रदर्शन कर रही हैं। इंगलैंड के सब समाचार पत्रों और रेडियो-टेलीविजनों में उस दिन शाम को तथा दूसरे दिन सुबह यह समाचार महत्वपूर्ण ढंग से दिया गया था।

निवेदन का शीर्षक था 'मदद'। उसमें कहा गया था :

• यह चेकोस्लोवाकिया के आपके साथियों की तरफ से आपके प्रति एक निवेदन है।

• आपके तथा वारसा-युद्ध-सन्धि के अन्य देशों की सेनाओं ने २१ अगस्त को चेकोस्लोवाकिया पर आक्रमण किया। नेताओं को गिरफ्तार किया।

• रूस तथा अन्य वारसा-सन्धि देशों को बताया गया है कि चेकोस्लोवाकिया के साम्यवादी साथियों की माँग के अनुसार

www.vinoba.in

उनकी मदद के लिए आप की सेनाएँ भेजी गयी हैं। लेकिन गत जनवरी माह से इस देश को ज्यादा लोकतंत्रात्मक बनाने का काम यहाँ की कम्युनिस्ट-पार्टी की देखरेख में ही हो रहा है।

चेकोस्लोवाकिया की आज की स्थिति का विवरण करने के बाद निवेदन में यह बताया था कि :

- युगोस्लाविया के राष्ट्रपति, रूमानिया के राष्ट्रपति तथा फ्रांस, इटली, ब्रिटेन वगैरह देशों की कम्युनिस्ट पार्टियों ने रूस के इस आक्रमणकारी कदम पर अपना दुःख और ग्लानि व्यक्त किया है।
- आपकी सरकार के इस काम के कारण दुनिया में शांति की शक्तियों को बहुत नुकसान पहुँचा है।
- रूस तथा अन्य वारसा-सन्धि के देशों की सब सेनाओं को चेकोस्लोवाकिया से एकदम हटाना ही पहला और आवश्यक कदम है, जिससे चेकोस्लोवाकिया की जनता को तथा दुनिया भर की शान्ति और समता के लिए काम करने वाली शक्तियों को नयी आशा मिले। यह करने की शक्ति और उसकी जिम्मेदारी आपकी सरकार की, और आप लोगों की है।
- इसलिए हम आपसे प्रार्थना कर रहे हैं कि जो भी शान्तिपूर्ण कदम आप इसके लिए उठा सकें, उठायें।

दिलचस्प अनुभव

मास्को में बिक्कीरोवरा नाम की एक अमेरिकन लड़की और इंग्लैंड से एंड्रू पॉपवर्थ गये थे। शाम को, जिस वक्त सड़कों पर काम से वापस आने वाले लोगों की भीड़ थी, पुश्किन् स्क्वायर में उन्होंने निवेदन के पर्चे बाँटे और अपना बैनर खोला। बिक्की कहती है : "जल्दी ही एक भीड़ इकट्ठी हो गयी। लोग बैनर पर लिखे शब्द और निवेदन पढ़ने लगे। कुछ लोगों में विरोध का भाव पैदा हुआ। एक स्त्री ने पूछा—'आप क्यों हमारे देश में आकर इस तरह गड़बड़ शुरू कर देती हैं ?' मैं उन्हें बताने का प्रयत्न कर रही थी कि मैं एक अन्तरराष्ट्रीय संघ की सदस्या और शान्तिवादिनी हूँ और हमारे विचार क्या हैं ? (बिक्की रूसी भाषा जानती है।) इतने में पुलिस पहुँची और मुझे ले जाने लगी। मैंने बची हुई निवेदन की प्रतियाँ उनके सिर के ऊपर से भीड़ में बिखेर दी।" एण्ड्रू बिक्की से थोड़ी दूर दूसरे स्थान पर निवेदन के पर्चे बाँट रहा था। उसने अपनी कमीज के पीछे भी बैनर के नारे लिखवाये थे। दोनों ने यह देखा कि विरोध करनेवाले सामने आकर शोरगुल मचाते थे, लेकिन भीड़ के पीछे कुछ लोग निवेदन गौर से पढ़ रहे थे। पुलिस दोनों को ले गयी। कुछ देर तक पूछताछ के बाद वे वापस अपने होटल में पहुँचा दिये गये और दूसरे दिन दोनों लन्दन वापस आ गये। उनका कहना है कि रूस में पुलिस का व्यवहार अच्छा और मैत्रीपूर्ण था।

गिरफ्तार होने के पहले बिक्की ने निवेदन की सौ प्रतियाँ रूस के कई विश्वविद्यालयों, संस्थाओं तथा राजनैतिक दलों के पते पर भेज दिया था।

वारसा की टोली में चार युवक और उनमें से एक की पत्नी यत्ते मिकिलसन भी थी। उन्होंने १.३० बजे से निवेदन बाँटना शुरू किया। कई लाइब्रेरियों में, और सार्वजनिक स्थानों में चुपके से एक हजार से अधिक प्रतियाँ बाँटी। ४.३० बजे कम्युनिस्ट पार्टी के केन्द्रीय दफ्तर के सामने अपना बैनर खोला और खुलेआम निवेदन के पर्चे बाँटने लगे। सब प्रतियाँ बँट गयीं। लोगों ने खूब दिलचस्पी दिखायी। कोई पन्द्रह मिनट के बाद पुलिस पहुँची और उन्हें गिरफ्तार किया। श्रीमती मिकिलसन थोड़ी दूर पर खड़ी थीं। उन्होंने कोपेनहेगन में टेलीफोन द्वारा खबर दी और फिर खुद भी गिरफ्तार हुईं। गुरुवार सुबह तक उन्हें कैद में रखा गया। फिर वे छूटकर वापस आ गये।

बुडापेस्ट की टोली को तीन दिन तक जेल भुगतनी पड़ी। उनमें 'युद्ध-विरोधी, अन्तरराष्ट्रीय संघ' के सहायक मंत्री बुजगांग जुवथ, जो जर्मनी के हैं, इंग्लैंड की एप्रिल कार्टर, अमेरिका के बाब ईटन, हालैंड के फ्रेंक फैनर और भारत के सर्वोदय-जगत् के सतीश कुमार भी थे। जनता की तरफ से उनका बहुत अच्छा स्वागत हुआ। दो लड़कियों ने बैनर खोलने में मदद की। एक आदमी ने उस पर माला पहनायी। बहुत लोग इकट्ठे हो गये। उन्होंने अपना समर्थन व्यक्त किया। कुछ लोगों ने निवेदन बाँटने में भी मदद की। जब पुलिस पहुँच गयी और प्रदर्शनकारियों को गिरफ्तार किया तो दो विद्यार्थी बैनर लेकर वहाँ से भाग गये, जिससे कि वह पुलिस के हाथ में न पड़े।

टोली के पाँचों सदस्यों को एकान्त-कैद में रखा गया। उनसे अलग-अलग ७२ घंटे तक पूछताछ होती रही। इस बीच में उन्होंने पुलिस को अपने विचार भी समझाये। शुक्रवार रात को पाँचों को आस्ट्रिया की सीमा पर लाकर छोड़ दिया गया। उन्हें बताया गया कि चूँकि वे नाटो और वियतनाम के युद्ध का विरोध करते हैं, इसलिए यह काम जारी रखने के लिए छोड़ दिये जा रहे हैं, लेकिन उन्हें 'साम्राज्यवाद और साम्यवाद का भेद समझने की जरूरत है।'

शोफिया की टोली ने सुबह चाय-काफी की दुकानों और खेल-कूद के मैदानों में निवेदन-पत्र बाँटे। ५ बजे उन्होंने शहर के केन्द्र स्थान पर बाँटना शुरू किया। १४, १५ मिनट तक बाँटते रहे। लोगों ने कोई विरोध नहीं दिखाया। गिरफ्तार होने के बाद उनसे पूछताछ की गयी और बुधवार की रात को छोड़ दिया गया।

अब चारों टोलियाँ सकुशल वापस पहुँच गयी हैं। यह चाहे कितने ही छोटे पैमाने पर क्यों न हो, उन देशों की जनता को वस्तुस्थिति बताने तथा उनसे सीधे अपील करने का एक प्रयास था। अन्ततोगत्वा शक्ति तो जनता के हाथ में ही है न ?

लार्ड रसेल का वक्तव्य

२४ सितम्बर '६८ को जब यह प्रदर्शन हो रहा था, तब श्री बर्टेण्ड रसेल ने यह वक्तव्य दिया :

"युद्ध-विरोधी अन्तरराष्ट्रीय संघ के के सदस्य, जिन्होंने कभी शीतयुद्ध के सैनिकों के जैसे बर्ताव नहीं किया, और न ही कभी किसी भी आक्रमण का समर्थन किया, उन्हें हमले का विरोध करने का केवल अधिकार ही प्राप्त नहीं हुआ है, बल्कि उन्होंने आक्रमणकारी देशों की जनता को चेकोस्लोवाकिया की परिस्थिति का

www.vinoba.in

बेल्जियम : छोटा देश, बड़ा आदमी

['देश छोटा तो समस्याएँ भी छोटी' 'आबादी कम तो केन्द्रीयकरण भी कम' बेल्जियम की जनता का प्रयोग सिद्ध सन्देश है। विकसित और अविकसित देशों का वैषम्य मिटाने के लिए तथाकथित आर्थिक सहायता से कहीं अधिक आवश्यक है अविकसित का शोषण बन्द करना। प्रस्तुत है यूरोपीय देशों में सर्वोदय विचार के प्रसार में संलग्न श्री सतीशकुमार का ताजा विवरण।—सं०]

एक करोड़ की आबादी हिन्दुस्तान के किसी एक जिले में समा सकती है, पर एक करोड़ की आबादीवाला बेल्जियम यूरोप का एक खूबसूरत और सम्पन्न राष्ट्र है। आबादी और क्षेत्रफल में यह देश भले ही छोटा हो, पर यहाँ के आदमी और उनके दिल पर इस छोटेपन का कोई असर नहीं है। "देश छोटा तो समस्याएँ भी छोटी। आबादी कम तो केन्द्रीकरण भी कम।" ये उद्‌गार अनेक बेल्जियन नागरिकों के मुँह से सुनने को मिलते हैं। बड़े देश अपने बड़प्पन के अभिमान में किस तरह का व्यवहार करते हैं, यह रूस और अमेरिका की नीतियों से जाहिर है। दुनिया को दो हिस्सों में बाँटकर अपने-अपने प्रभाव-क्षेत्र में मनमानी चलाने तथा तटस्थ देशों को तेजहीन बनाकर रखने की राजनीति ने इस संसार को अशान्ति की आग में ढकेल रखा है। "हमें बड़ी ताकत के देशों की नहीं बल्कि बड़े दिल के आदमियों की जरूरत है।" श्री आर्थर डिमुंक ने कहा।

हाल्ले की 'सर्व सेवाकुटी'

श्री आर्थर डिमुंक ने अपने हाथ से लकड़ी की एक कुटी बनायी है और इसका नाम रखा है : "सर्व सेवा कुटी।" इस कुटी का निर्माण करने में श्री आर्थर ने छह महीने लगातार परिश्रम किया। "भारत, गांधी, विनोबा, अहिंसा, सत्य, अध्यात्म आदि विषयों पर चर्चा, गोष्ठियाँ, एवं अध्ययन-कक्ष चलाने के लिए ही मैंने इसका निर्माण किया है।" श्री आर्थर के निमंत्रण पर मैंने सप्ताह भर इस कुटी में बिताये और दो बार विचार-गोष्ठियों में भाषण किये, पर कुटी का औपचारिक उद्‌घाटन २ अक्तूबर १९६८ को हुआ होगा। गांधी शताब्दी वर्ष को प्रारम्भ करने के निमित्त इस कुटी में अनेक गांधी मित्र 'रात्रि-जागरण' और २४ घंटे लगातार गांधी-साहित्य का पाठ किये होंगे।

बेल्जियम की राजधानी ब्रुसेल्स से करीब ४० मील पश्चिम की ओर 'हाल्ले' नाम के छोटे से गाँव में श्री आर्थर रहते हैं, और यहीं पर 'सर्व सेवा कुटी' भी है। वे अधिकाधिक सर्वोदय कार्यकर्ताओं से सम्पर्क करने को उत्सुक हैं : (पता—**ARTHUR DUMUYNCK, 17, NACHTE GAALDREEF, HALLE, ANTWERP, Dist. BELGIUM)**

बेल्जियम में गांधी, विनोबा और ग्रामदान के प्रति गहरी दिलचस्पी पैदा करने का श्रेय फ्रांस के प्रसिद्ध शान्तिवादी लांजादेलवास्तो और भारत में एक स्वयं-सेविका की तरह काम करनेवाली बेल्जियन बहन लिया प्रोवो को है। श्री आर्थर ने लांजा और लिया के काम को स्थायी बनाने में अपना पूरा सहयोग दिया है। उनका घर एक आश्रम जैसा है और मेरे लिए तो यह अपना ही 'घर' है। श्री आर्थर और उनका परिवार मात्र शाकाहारी ही नहीं है, बल्कि सत्वहीन—उजली डबल रोटी, डिब्बों और टिनों में भरा हुआ आहार, तथा केमिकल पदार्थों से युक्त खाद्य-सामग्री का भी उन्होंने पूर्ण बहिष्कार किया है। श्रीमती आर्थर कहने लगीं कि "सुपर बाजारों में सजाये हुए, खूबसूरत डिब्बों में बन्द अधिकांश खाद्य-पदार्थ स्वास्थ्य की दृष्टि से 'अखाद्य' हैं, पर हमारा जीवन तो विज्ञापन बाजों द्वारा बनाये हुए नियमों के अनुसार चलता है। प्रकृति के नियम हम क्या जानें! क्या खायें, क्या पीयें, क्या पहनें इत्यादि सब कुछ हम टेलिविजन और अखबारों द्वारा प्रसारित विज्ञापनों से सीखते हैं।"

जनतंत्र के नये प्रश्न

एक मात्र क्रान्ति चाहनेवाले यूरोप के छात्र बेल्जियम में भी काफी सक्रिय हैं। इन दिनों यहाँ के छात्र जनतंत्र के सही अर्थ और सही व्याख्या की खोज में लगे हैं। अमेरिका जनतंत्र का सबसे बड़ा 'रक्षक' है। पर यह 'रक्षा' बिना बन्दूक के सम्भव नहीं। डेमोक्रेटिक पार्टी के अधिवेशन के दौरान शिकागो में पुलिस की बर्बरता के उदाहरण ने बेल्जियम के छात्रों में नये प्रश्न पैदा किये हैं। पुलिस, पैसा, प्रचार और प्रोपेगंडा पर आधारित यह औपचारिक जनतंत्र कितना वास्तविक और व्यावहारिक हो गया है, यह शिकागो की घटनाओं ने सिद्ध कर दिया। १२ हजार युद्ध-विरोधी मेकार्थी-समर्थक, शान्त प्रदर्शन-

---

सही हाल बताना अपना कर्तव्य माना है। मैं तहेदिल से आशा करता हूँ कि नाटो व वियतनाम के युद्ध के विरोधियों द्वारा किये जानेवाले आज के प्रदर्शन से लोगों को पता चलेगा कि यह आक्रमण किसी भी तरह से न्यायसंगत नहीं ठहराया जा सकता है, और उससे चेकोस्लोवाकिया की जनता को अपना स्वयं-निर्णय का हक हासिल करने का मार्ग इतना आपद्‌ग्रस्त नहीं रहेगा।"

इटली के सुप्रसिद्ध शान्तिवादी आल्डो केपिटिनी ने यह कहा : "हिंसक आक्रमण के ऐसे कृत्य के परिणामों से आज कोई भी अछूता नहीं रह सकता है। इसलिए दृढ़तापूर्वक लेकिन सौहार्द्रपूर्ण चेतावनी देना अनिवार्य हो गया है, जिससे जिनके ऊपर यह दमन हुआ है, वह जनता असहाय न महसूस करे। चेकोस्लोवाकिया में अहिंसक प्रतिकार का जो कार्य हुआ है, जिसमें शत्रु को नष्ट करने का नहीं, समझाने का प्रयास है, उससे आक्रामक देशों को वृत्ति बदलनी चाहिए। अन्तरराष्ट्रीय और सौहार्द्र को जो लोग आज अपने काम से सक्रिय रूप दे रहे हैं, उनको अहिंसक उपायों की कार्यक्षमता पर पूरा विश्वास है।

कल तक अहिंसा एक नयी प्राप्ति थी आज वह ज्यादा व्यापक हो रही है और वह इस दुनिया को बदल देगी।"•

कारियों को चुप करने के लिए १५ हजार सिपाही शिकागो में तैनात थे। इनके अलावा ५ हजार सिपाही और ७ हजार सैनिक जरूरत होने पर तुरन्त पहुँच सकें, इसकी तैयारी थी। राष्ट्रपति-टिकिट के शान्तिवादी उम्मीदवार मेकार्थी के दफ्तर और स्टोर पर भी पुलिस ने हमला किया। "उदारवादी, शान्ति-समर्थक और क्षुणित-वियतनाम-युद्ध से थकी हुई अमेरिकी जनता ने सोचा था कि शायद मेकार्थी उनके लिए मानवीय-राजनीति का नया रास्ता खोलेंगे और निक्सन के मुकाबिले एक सही विकल्प चुनने का मौका देंगे, पर अमेरिका के ऊँचे साहबों को यह कहाँ मंजूर था। आखिर निक्सन और हम्फरी में अन्तर ही क्या है कि चुनाव किया जाय? दोनों ही शान्ति से ज्यादा अमेरिकी प्रतिष्ठा को महत्व देते हैं। दोनों ही परिवर्तन को नहीं, बल्कि स्टेटस्को, कानून, व्यवस्था, सक्षम पुलिस एवं सशक्त सेना के समर्थक हैं।"

बेल्जियम के उदारवादी तरुणों एवं क्रान्तिकारी छात्रों के बीच शिकागो में औपचारिक जनतंत्र और चुनाव-पद्धति का जो तमाशा हुआ, उसकी यही प्रतिक्रिया हुई है। इन छात्रों ने मुझसे कहा कि "भारत भी तो इसी औपचारिक जनतंत्र के अमेरिकी रास्ते पर चल रहा है।"

भारत-जैसी ही भाषा-समस्या

बेल्जियम की भाषा-समस्या अब कुछ-कुछ सुलझती नजर आ रही है। यह एक द्विभाषी राष्ट्र है। आधी से ज्यादा आबादी फ्लेमिश है और उसकी भाषा डच है। बाकी आबादी वालून है और उसकी भाषा फ्रेंच है। फ्रेंच भाषियों ने डच भाषियों के साथ लगभग वही बरताव किया, जो अंग्रेजी भाषी साहब हिन्दी अथवा भारतीय भाषाओं के साथ करते हैं। पिछले साल डच भाषी फ्लेमिश जनता ने इस दमन के खिलाफ तीव्र आंदोलन किया। परिणामस्वरूप सरकार को इस्तीफा देना पड़ा। नये चुनाव हुए। पर किसीको भी प्रत्यक्ष बहुमत नहीं मिला। कोई भी पार्टी सरकार नहीं बना पायी। लगभग चार महीने तक बेल्जियम में सरकार थी ही नहीं। हालांकि इस सरकार के अभाव में कोई गजब नहीं ढह गया। आखिर दोनों पक्ष राजी हुए और वर्तमान में दोनों भाषाओं के बराबर-बराबर प्रतिनिधियों ने सरकार का गठन किया है और सभी कामकाज दोनों भाषाओं में चलते हैं। नोब्रसार्ट के 'यूथ-कैंप' में मैंने दो दिन बिताये। वहाँ फ्लेमिश और वालून दोनों प्रकार के तरुण एकत्र थे और एक दूसरे के प्रति पूरी उदारता बरत रहे थे।

शोषितों की 'तीसरी दुनिया'

ब्रुसेल्स से लगभग १०० मील दक्षिण में ३०० आदमियों की एक छोटी-सी बस्ती नोब्रसार्ट है, जहाँ पियरे दुबोट नाम के एक शान्तिवादी शिक्षक प्रतिवर्ष दो सप्ताह के लिए लगभग २५-३० युवकों को अपने घर पर आमंत्रित करते हैं। इन तरुण अतिथियों का यूथ-कैंप केवल खाने-पीने, नाचने-गाने, आमोद-प्रमोद करने मात्र तक ही सीमित नहीं है, बल्कि दुनिया की ज्वलंत समस्याओं को समझने और उन समस्याओं के हल में प्रत्येक व्यक्ति कैसे सहायक बन सकता है, इस सम्बन्ध में विचार-विमर्श करने का भी एक मंच इस यूथ-कैंप में उपलब्ध होता है। मेरी उपस्थिति के दौरान पूरे यूथ-कैंप की चर्चा का विषय भारत एवं अन्य 'अविकसित' देशों की समस्याओं से सम्बन्धित था। "पूँजीवादी विकसित देशों की एक दुनिया है और साम्यवादी विकसित देशों की दूसरी दुनिया है। परन्तु एशिया, अफ्रीका और दक्षिण अमेरिका के देशों की हमारी जो 'तीसरी दुनिया' है, क्या वह सचमुच 'अविकसित' है या पहली और दूसरी दुनिया द्वारा 'शोषित' है?" मैंने यह सवाल यूथ-कैंप के तरुणों के सामने रखा। मेरे इस सवाल के सन्दर्भ में श्री पियरे दुबोट ने कहा कि "इन अविकसित देशों को यूरोप और अमेरिका के रास्ते से विकसित बनाने के लिए हम जो तथाकथित सहायता कर रहे हैं, उससे भी बड़ी सहायता यह होगी कि हम इस तीसरी दुनिया का शोषण करना बन्द कर दें।"

फादर दोमिनिक पीर का 'शान्तिद्वीप'

नोबल पुरस्कार प्राप्त करने के बाद ही नहीं, बल्कि उसके पहले से बेल्जियम के मूर्धन्य समाज-सेवक और गांधी-परिवार के मित्र फादर दोमिनिक पीर को हम सभी जानते हैं। 'तीसरी दुनिया' के देशों की समस्याओं में वे निरन्तर दिलचस्पी लेते रहे हैं। पूर्वी पाकिस्तान में और अब दक्षिण भारत में 'शान्तिद्वीप' की स्थापना के उनके प्रयत्नों को काफी यश प्राप्त हो चुका है। 'शान्ति-द्वीप' के कार्यक्रम के पीछे फादर दोमिनिक पीर की यह कल्पना है कि एक नमूने के तौर पर किसी गाँव की पुनर्रचना करके आस-पास के गाँववालों को समझाया जाय कि 'आदर्श गाँव' कैसा होता है। जब इस 'नमूने के गाँव' को लोग देखेंगे और पायेंगे कि इस गाँव का जीवन अधिक सुखी और सम्पन्न है तो आसानी से लोग विकास-कार्यक्रमों को अपना सकेंगे। पूर्वी पाकिस्तान में 'शान्ति-द्वीप' की कल्पना को काफी सफलता मिली है और अब तमिलनाड में यह योजना प्रारम्भ होनेवाली है।

मद्रास-सरकार की तरफ से सहयोग के अभाव के कारण कुछ कठिनाइयाँ बताई जाती हैं, पर ग्रामदान-आन्दोलन के साथ उनका पूरा सहयोग है। यहाँ बेल्जियम में ब्रुसेल्स से लगभग २५ मील पर 'ह्वी' नाम के नगर में फादर पीर ने 'शान्ति विश्वविद्यालय' की स्थापना की है। यह विश्वविद्यालय सीखने-सिखाने का एक उन्मुक्त केन्द्र है। इन दिनों फादर पीर बेल्जियम गांधी शताब्दी समिति के अध्यक्ष हैं, और व्यापक पैमाने पर गांधी शताब्दी-समारोह मनाने की तैयारियाँ कर रहे हैं।

मैंने कुल मिलाकर बेल्जियम में ७ सप्ताह बिताये। ग्रामदान आन्दोलन के काम की व्यापक जानकारी और गांधी विचार में गहरी दिलचस्पी इस देश के लोगों में पाकर मुझे आश्चर्य और आनन्द हुआ।

—सतीश कुमार

भूदान तहरीक

उर्दू भाषा में अहिंसक क्रांति की संदेशवाहक पाक्षिक

वार्षिक शुल्क : ४ रुपये

सर्व सेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी-१

बुनियादी शिक्षा की बुनियाद

www.vinoba

बुनियादी तालीम में श्रेष्ठ-कनिष्ठ है नहीं। यह जो दूसरी तालीम चलती है, उसमें हेड-मास्टर, मास्टर वगैरह होते हैं, तनख्वाह कम-बेशी होती है। और वहाँ बिलकुल विपरीत बात चलती है कि जो हेडमास्टर होता है, यानी जिसको ज्यादा बुद्धि और अनुभव होता है, उसको सिखाने के लिए नीचे के वर्ग देने के बदले ऊपर के वर्ग देते हैं। असल में जो सबसे अधिक अनुभवी, कुशल और बुद्धिमान मास्टर होगा उसको बिलकुल पहले वर्ग को सिखाने को कहना चाहिए, क्योंकि वहाँ शून्य में से तैयार करना होता है, इसलिए अधिक कुशलता की आवश्यकता रहती है।

आप जानते हैं भारत के एक बहुत बड़े आचार्य रवीन्द्रनाथ को। उनका खयाल था कि पढ़ाई नाम की कोई वस्तु नहीं होनी चाहिए। बल्कि गाना गाते जायँ, बोलते जायँ, विद्या पाते जायँ। पता ही न चले कि विद्या पा रहे हैं, ऐसा हो। उस पर हमने लिखा था कि भास नहीं होना चाहिए कि हम सीख रहे हैं; भास होना चाहिए कि हम कुछ-न-कुछ काम कर रहे हैं। हम सीख रहे हैं, यह पता नहीं चल रहा है और काम करते-करते विद्या पाते जायँ। जैसे खेलते हैं, तो पता नहीं चलता कि व्यायाम मिल रहा है और व्यायाम मिलता है। किसान खेत में काम करता है तो उसको मालूम नहीं होता कि उसका व्यायाम हो रहा है, और व्यायाम हो जाता है।

हमारे आश्रम में हम हाथ-चक्की पर पीसते थे। एक बार मैं पीस रहा था और मेरे साथ बारह साल का एक लड़का भी पीस रहा था। उसी समय एक सज्जन मुझसे मिलने के लिए आये। उन्होंने देखा, तो बोले, यह तो 'चाइल्ड लेबर' हुआ। बच्चों से इस प्रकार 'लेबर' करवाना ठीक नहीं। हमने कहा, ठीक है। कल हम इसी चक्की पर बैठेंगे—इसी तरह चक्की घुमायेंगे—एक बार दायीं ओर से एक बार बायीं ओर से, लेकिन उसमें अनाज नहीं डालेंगे, यानी पीसा कुछ नहीं जायेगा—पर इसी तरह चक्की घुमाते रहेंगे तो फिर वह 'चाईल्ड लेबर' नहीं होगा, वह 'एक्सरसाइज' होगा। अगर उस श्रम में से कुछ पैदा हुआ, तो वह श्रम होगा, नहीं तो व्यायाम होगा। एक बार, हमने एक किताब पढ़ी थी—'थ्री मिनट्स एक्सरसाइज'—तीन मिनट में व्यायाम। कुछ नहीं करना—कमरे में यहाँ से वहाँ तक दरी बिछा देना और उस पर इधर-से-उधर, उधर-से-इधर लेटकर लुढ़कना, ढिमलाना, लोढ़ना। बस, ऐसा बिना श्रम का व्यायाम।

आज हमारा सारा जीवन परिश्रमहीन हो गया है। यह बात हममें पैठ गयी है। इसके तीन कारण हैं। एक कारण तो यह है कि जाति-व्यवस्था टूट गयी। और दूसरा, वर्णाश्रम-व्यवस्था बनी। ऊँची जाति के लोग काम करेंगे नहीं। और तीसरा, अंग्रेजों के आने के बाद उन्होंने ऊँची जाति को अंग्रेजी सिखा दी। वे अंग्रेजी बोलने में, अंग्रेज जैसे बरतने में बड़प्पन मानने लगे। 'मदर' कहने में उनको विशेष आदर, प्रतिष्ठा महसूस होती है, 'माँ'

विनोबा

कहने में अप्रतिष्ठा लगती है। तो वह एक वर्ग तैयार हो गया, जो शरीरश्रम को हीन मानने लगा। तो वर्ण-व्यवस्था के अनुसार ऊँचा वर्ग अंग्रेजी शिक्षा के कारण और ऊँचा हो गया। उनकी ऊँचाई की सीमा नहीं रही, और ऊँच-नीचता बनी रही। फलाना काम ऊँचा, फलाना नीचा—यह भावना आयी। अब यह सारा तोड़ना होगा, तब भारत बचेगा।

हमारे यहाँ परिश्रमनिष्ठा बहुत बड़ा तत्त्व है। वह बुनियादी तालीम का बहुत बड़ा तत्त्व है। लेकिन आज का समाज उसके लिए अनुकूल नहीं।

प्रश्न : आप भारत भर में ग्रामदान-प्रांतदान का आन्दोलन चला रहे हैं। नयी तालीम का काम तो अधिक महत्व रखता है। क्या उसके लिए आन्दोलन में कहीं स्थान नहीं कि भारत में नयी तालीम का अमल हो ?

उत्तर : इस पर सतत अमल हो रहा है। सन् '५१ से '६८ तक भारत की पदयात्रा हुई। उसमें सतत नयी तालीम का कार्य चला। शिक्षा में अहिंसक क्रान्ति लाने का कार्य चला। उसके पहले कौन पैदल चलता था ? हमारी यात्रा के बाद ऐसा असर हुआ कि चुनाव के लिए खड़े होते हैं, तब बड़े-बड़े लोग भी पदयात्रा करने लगे। लेकिन उनकी पदयात्रा कैसी होती है ? 'पदयात्रा' एक समास है। बड़े-बड़े लोग जो पदयात्रा करने लगे वह 'पदयात्रा' मध्यम-पदलोपी समास है। पदप्राप्ति के लिए यात्रा। इतनी पदयात्रा की प्रतिष्ठा हो गयी।

आज जनता को शिक्षित किये बिना 'बेसिक एजुकेशन' (बुनियादी शिक्षा) को बुनियाद ही नहीं मिलेगी। यह ध्यान में आया नायकम्जी को। वे हमारे साथ तमिलनाड में घूम रहे थे। अभी तो वे हमारे बीच में नहीं है, बिलकुल ऊँचा शरीर, हजार लोगों में भी दीखे, ऐसा। उन्होंने कहा कि हरएक बच्चे को तालीम मिलनी चाहिए। लेकिन भारत में करोड़ों लोगों को खाने को मिलता नहीं। और परिवार में पाँच-छः साल का लड़का भी 'अर्निंग मेम्बर' (कमाऊ सदस्य) है। भैंस की पीठ पर बैठकर उसे चराने ले जाता है। वह न हो, तो भैंस का दूध मिलेगा नहीं। पाँच साल का लड़का घर का 'अर्निंग मेम्बर' है। वह आपके स्कूल में कैसे जायेगा ? इसलिए प्रथम तो सब बच्चों के लिए इन्तजाम होना चाहिए खाने-पीने का। उसके बिना बुनियादी स्कूल को आधार नहीं है। यह उन्होंने देखा, तब कहा कि अब ध्यान में आया कि नयी तालीम विद्यालय केवल विद्यालय तक सीमित नहीं होना चाहिए, पूरे गाँव को विद्यालय मानना चाहिए। और नयी तालीम के सम्मेलन में उन्होंने प्रस्ताव पास किया कि पूरे गाँव को स्कूल मानकर 'ट्रीट' किया जाये। और विद्यालय व्यापक किया जाये। इसका अर्थ यह हुआ कि बुनियादी तालीम के लिए आधार ही ग्राम है। गाँव ग्रामदान हो जाता है, तो ग्रामसभा के द्वारा हर बच्चे के लिए तालीम का इन्तजाम होगा। ऐसी व्यवस्था होगी कि बुनियादी तालीम घर के हर बच्चे तक पहुँचे। डा० जाकिर हुसेन नयी तालीम के बड़े आचार्य हैं। उन्होंने माना है कि बुनियादी तालीम जब ग्रामीण आधार पर खड़ी होगी, तभी

उसकी असलियत प्रकट होगी। नहीं तो नहीं। सरकार ने क्या किया? कुछ सरकारों ने बुनियादी तालीम को माना और किया क्या? जो लड़का वह तालीम पायेगा, उसको हाई-स्कूल में प्रवेश नहीं। यानी बुनियाद बनायी त्रिकोणी और ढांचा चतुष्कोणी, अगर ऊपर का ढाँचा भी त्रिकोणी हो तो ठीक, नहीं तो बुनियाद चतुष्कोणी हो। बापू के आग्रह के खातिर बुनियादी तालीम चलायी और आखिर उसको भी पटक दिया। आज बुनियादी तालीम के नाम पर भारत में जो चलता है, वह बिलकुल ही गलत है।

बुनियादी तालीम का विचार बहुत व्यापक है और उसके लिए अवसर ग्रामसभा के बिना होगा नहीं। यह विचार गांधीजी ने दिया था और उसका अमल किया चायना ने। वहाँ उन्होंने 'हाफ-हाफ' स्कूल चलाया है। तीन घण्टे श्रम और तीन घण्टे ज्ञान। तमाम विद्यार्थियों को इसी तरह तालीम मिलेगी। वर्ग, जाति, ऊँच-नीच का भेद नहीं। जो भी स्कूल में जायेगा, उसको श्रम करना पड़ेगा। यही बापू ने कहा था कि तालीम में ज्ञान और कर्म साथ-साथ होना चाहिए। भारत में आज वैसा है नहीं।

बुनियादी शिक्षकों के बीच :

बेतिया, ८-८-'६८

राजस्थान अकाल राहत कमेटी

राजस्थान प्रदेश के अधिकांश क्षेत्रों में इस साल अभूतपूर्व सूखे के कारण भयंकर अकाल की स्थिति आ गयी है। सरकार राहत का काम कर रही है, लेकिन परिस्थिति शायद सरकार के काबू से बाहर की है। ऐसी स्थिति में प्रदेश को देश भर से सहायता पहुँचाने के लिए राजस्थान में एक **राजस्थान अकाल** राहत कमेटी का गठन हुआ है, जिसके संयोजक श्री गोकुल भाई दौ० भट्ट ने देश के उदार और सहृदय नागरिकों तथा संस्थाओं से मदद की अपील की है। **कमेटी का पता :**

राजस्थान अकाल राहत कमेटी, किशोर निवास, त्रिपोलियाबाजार, जयपुर-२

देश के आर्थिक जीवन में गलत प्रवाह

उसे कैसे रोकें ?

गांधी-दर्शन के अनन्य भाष्यकार स्व० श्री कि० घ० मश्रूवाला ने हिन्दुस्तान के गाँवों का जो चित्र आजादी के पहिले खींचा था वह आज भी ज्यों-का-त्यों बना है :—

"हिन्दुस्तान गाँवों में बसा है यह बात तो बारम्बार कही गयी है, पर हिन्दुस्तान की संपत्ति सम्बन्धी आज की अधिकांश योजनाएँ गाँवों के हित की दृष्टि से नहीं बनायी गयी हैं। इसका नतीजा यह हुआ है कि गाँवों का कच्चा माल शहर में पटता है तथा शहरों में बने पक्के माल से गाँवों को पाटने की कोशिश की जाती है। जीवन के बहुतेरे साधन जो गाँव के खेतों और जंगलों में लगभग मुफ्त मिल सकते हैं, उनके बदले शहरों और विदेशों में बना हुआ देखने में थोड़ा-बहुत सुविधाजनक लेकिन अधिकांश में दिखावे के लिए ही आवश्यक और अच्छा लगनेवाला माल काम में लाने का फैशन बढ़ जाने से देहात के बहुत-से उद्योग और मजदूरी के धन्धे नष्ट हो गये और होते जा रहे हैं। ऐसा अधिक आकर्षक सामान आरोग्य और स्वच्छता की दृष्टि से हानिकारक और गन्दा भी होता है, खर्चीला तो होता ही है। ये सब चीजें गाँव की वस्तुओं से सस्ती पड़ती हों सो बात नहीं है।

"इसके सिवा व्यापारियों की संकुचित और तुरन्त मुनाफा कमा लेने की स्वार्थ दृष्टि ने बहुत-से देहाती माल को मशीन के माल की अपेक्षा पड़ते में महँगा न होते हुए भी, खरीददार के लिए महँगा बना दिया है। इससे जो बाजार सहज में देहात के हाथ में रह सकता है वह भी कारखानों और विदेशियों के हाथ में चला गया है।

"जब अर्थशास्त्र और जीवन में ग्रामदृष्टि का प्रवेश होगा तब देहात की बनी चीजों का अधिकाधिक उपयोग करने की ओर जनता का मन झुकेगा।

"इस प्रकार आज संपत्ति देहात से शहरों में चली जा रही है और देहात हर दृष्टि से कंगाल होते जा रहे हैं।"

इस प्रवाह को बदलने की जरूरत है। यह कैसे बदलेगा ?

त्रिविध कार्यक्रम (ग्रामदान, ग्रामाभिमुख खादी एवं शांति-सेना) के जरिये आप इस प्रवाह को बदल सकते हैं।

सन् १९६९ गांधीजी की जन्म-शताब्दी का साल है।
आइए, इस प्रवाह को बदलने में सब जुट जायँ।

राष्ट्रीय गांधी जन्म-शताब्दी समिति की गांधी रचनात्मक कार्यक्रम उपसमिति द्वारा प्रसारित

सर्वोदय-क्रान्ति की मौलिकता : 'सर्व' के द्वारा 'सर्व' के लिए

[स्वीडेन के एक मित्र ने ग्रामदान आन्दोलन का अध्ययन करके अपनी आलोचनात्मक प्रतिक्रिया श्री नारायण देसाई को एक पत्र में लिख भेजी है। उक्त मित्र के मन के भाव उन तक ही सीमित हों, ऐसी बात नहीं, अक्सर इस आन्दोलन की आलोचनाएँ इन बातों को लेकर होती हैं, जो इस पत्र में व्यक्त हैं। पत्र के कुछ अंश और श्री धीरेन्द्र मजूमदार की प्रतिक्रिया दोनों साथ-साथ प्रस्तुत करते हुए हम आशा करते हैं कि पाठक भी अपनी प्रतिक्रिया भेजेंगे। —सं०]

एक भ्रमजाल

…ग्रामदान के सम्बन्ध में मेरा अध्ययन बहुत ही हतोत्साह और निराशा के साथ समाप्त हुआ। आप सोच सकते हैं कि मेरी आलोचना निराधार है, अनजानी है, व्यर्थ है। और मैं स्वीकार करता हूँ कि तथ्य-पूर्ण निर्णयों पर पहुँचने की स्थिति से पूर्व मेरे लिए जानने को बहुत कुछ बाकी रह जाता है। लेकिन मैं भरोसे के साथ कह सकता हूँ कि कुल मिलाकर मैंने पूरी तस्वीर देख ली है, और मैं मुख्य विचारों और विकास की पद्धतियों से वाकिफ हूँ।

"अहिंसक-क्रान्ति" एक मिथ्या जाल है। यह शब्दों के साथ एक अबोध क्रीड़ा हो सकती है। सिद्धान्तरूप में, विनोबा के सुन्दर व्याख्यानों में, कुछ ईमानदारी की, कुछ मूल्यों की बात हो सकती है। किन्तु जब हम विचार को व्यवहार के क्षेत्र में लाते हैं तो वे मूल्य तुरंत गायब हो जाते हैं।

लेकिन क्या आन्दोलन बराबर और अधिक मजबूत नहीं होता जा रहा है? हर महीने आपको यह पढ़ने को मिल जाता है कि इतने और अधिक ग्रामदानों की घोषणाएँ हो गयीं?

मेरे देखने में एक भी सही ग्रामदान नहीं है। कुछ "सुलभ ग्रामदानी गाँव हैं"। अधिकांश ग्रामदान सिर्फ कागज पर हैं; उनमें कतई कोई काम नहीं होता। मैं जानता हूँ कि आप इससे अवगत हैं, यह बात मेरे लिए नयी है, आपके लिए नहीं।

लेकिन क्यों? जैसा कि मैं देखता हूँ (जो कि निःसंदेह गलत हो सकता है) इसके अनेक कारण हैं। बहुत सारे ग्रामदान-कार्यकर्ता बहुत ही अक्षम, अशिक्षित, अनजान हैं, और वस्तुतः वे यह नहीं जानते कि यह सब कुछ एक सामाजिक क्रान्ति के लिए है। वे अन्तर से और हृदय से रुढ़िवादी और प्रतिक्रियावादी हैं। वे ईमानदारी के साथ यह नहीं चाहते कि समाज में बुनियादी परिवर्तन हो। ग्रामदान-आन्दोलन एक जनआन्दोलन नहीं है। यह एक धनाढ्यों की ओर से गरीबों के लिए धनवानों की सीमित दया पर आधारित आन्दोलन है। यह विश्वास करना नासमझी की बात है, कि धनवान अपने सारे अधिकार और धन का त्याग कर देंगे—भले ही वे निष्ठावान हिन्दू हैं, और त्याग इस धरती पर पवित्रतम चीज है, तो भी। वे इसका एक छोटा-सा अंश दे सकते हैं, लेकिन उतना तो हर्गिज नहीं, जितने से वास्तव में वे प्रभावित होते हों। अधिकार और धन को शक्ति से लेना पड़ेगा और उनका लोगों में बंटवारा करना पड़ेगा।

ग्रामदान-आन्दोलन कांग्रेसदल द्वारा समर्थित है, (किसी रूप में, जबानी समर्थन) और बहुत से भूतपूर्व कांग्रेसी सर्वोदयी लोगों में शामिल हैं। इससे एक बड़ी चीज सामने आती है। नयी तालीम के बारे में विनोबा कहा करते हैं, कि प्रारम्भ में इसके बहुत से शत्रु हो सकते हैं, क्योंकि नयी तालीम पूँजीवाद और शोषण की बुनियादों को ही नष्ट कर डालेगी। लेकिन कोई इसका शत्रु नहीं है, यह स्थिति ग्रामदान की है। पूँजीपति और शोषक, कांग्रेसी और अन्य प्रतिक्रियावादी शक्तियाँ आपको मदद करती हैं, आपके शान्तिपूर्ण समाज-परिवर्तन से उन्हें कोई भय नहीं है। वे आपको अपना सहकर्मी-जैसा मानते हैं, और बहुत मानी में आप उनके सहकर्मी हो भी गये हैं।

ग्रामदान की बुनियाद के लिए एक और बड़ा खतरा 'अहिंसा' का है। अहिंसा की आपकी व्याख्या आखिरी सीमा की है। आपके लिए इसका अर्थ है सबके साथ मित्रवत् होना—पूँजीपति, साहूकार, भूपति, शोषक, भूमिहीन, किसान, दैनिक मजदूरी पर खटनेवाला मजदूर, आदि सबके साथ; यहाँ तक कि अपराधियों और पीड़ितों के साथ भी। आपकी अहिंसा समझौते की ओर धकेलती है, और धकेलती ही जाती है, जब तक कि आपके विचार में अपना कुछ रह नहीं जाता।

अगर हिंसा तत्काल शुरू हो जाय और धरती पर शोषण तथा निर्दलन का कोई अस्तित्व ही न रह जाय, तो शायद अहिंसा का नारा सारे झगड़ों को खत्म कर डाले। लेकिन अगर सम्पूर्ण क्षेत्र, आपका अहिंसा का विचार भी, हजारों वर्षों के निर्दलन से ग्रस्त है, आपकी निःशस्त्रता आपको जालिमों की श्रेणी में पहुँचाने का काम करती है। हिंसा सर्वत्र है, और जहाँ कहीं मैं गया हूँ, उन सबसे अधिक यहाँ भारत में है। पिछले कुछ महीनों के दरम्यान, जबकि मैं यहाँ रहा हूँ, मैंने काफी नजदीक से इसे और बढ़ते हुए महसूस किया है। अगर यह 'हमारी' अपनी हिंसा नहीं है, और यह 'हमारे' ऊपर लादी गयी है, (मैंने 'हम' का प्रयोग किया है, क्योंकि भारतीयों के भाग्य के साथ कुछ हद तक अपना तादात्म्य महसूस करता हूँ) जिसने हमें भूखा रखा है, प्रताड़ित किया है, निर्वीर्य और पशुवत् बना दिया है, तो हमें इस हिंसा से मुक्ति लेनी होगी—इसे वहीं वापस फेंककर, जहाँ से यह सम्बन्धित है, पूँजीपतियों, शोषकों, निर्दलकों के ऊपर फेंककर।

आप संशोधनवादी रास्ते पर लुढ़क रहे हैं, और जिस तरह आप करते हैं, उससे

यही सम्भव भी है। इसीलिए आपकी विफलता ने मुझे यह मानने को विवश किया है कि हमें क्रान्ति का नया पथ चुनना पड़ेगा। इसमें काफी हिंसा हो सकती है। लेकिन यथास्थिति को कायम रखने से अधिक क्रूर दूसरी और कोई चीज हो नहीं सकती। ग्रामदान के विचार और व्यवहार में बहुत सारे नकारात्मक पहलुओं के बीच कुछ विधायक चीजें भी हैं। मैंने आपलोगों से काफी सीखा है। मैं नहीं जानता, लेकिन मुझे आशा है कि आप पूर्णतया समाप्त नहीं हो गये हैं। मैं सोचता हूं कि अब भी आपको क्रान्ति की प्रक्रिया से जुड़ने का एक मौका है। आपके बहुत से विचार-क्रान्ति को समृद्ध करेंगे और क्रान्ति के बाद आपके अनुभव बहुत मूल्यवान होंगे, जब समाजवादी समाज-रचना शुरू होगी—शोषण और निर्दलन से मुक्त समान स्त्री-पुरुषों के समाज की रचना। —क्रीस टेरेनियस

www.vinoba.in

क्रान्ति की 'लीक' से भी अलग

स्वीडेन के जिस भाई ने यह पत्र लिखा है वह उनकी दृष्टि से ठीक है। क्योंकि अब तक क्रान्ति और अहिंसा इन दोनों प्रश्नों पर जितने अमल हुए हैं उनकी प्रक्रिया से सर्वोदय की इस क्रान्ति का मेल नहीं बैठता। पत्र में दो प्रश्न उठाये गये हैं। पहला प्रश्न ग्रामदान की प्रक्रिया और निष्पत्ति के बारे में है। इसको समझने के लिए क्रान्ति की भिन्न-भिन्न प्रक्रियाओं को समझना होगा। अब तक क्रान्ति की परम्परागत प्रक्रिया यह रही है कि शक्तिशाली विचारक के नेतृत्व में विचारनिष्ठ मनुष्यों का एक जमात बनाकर अवांछनीय तत्त्व पर प्रहार कर उसे परास्त किया जाय। विनोबाजी क्रान्ति की प्रक्रिया में नया मोड़ देने का प्रयास कर रहे हैं। वह यह है कि क्रान्ति के विचार की शक्ति से लोकमानस में क्रान्ति का निर्माण हो और उसके फलस्वरूप समाज के मूल्यों में परिवर्तन हो। इसलिए वे समाज में क्रान्ति-विचार का अनुप्रवेश कराना चाहते हैं। उनके विचार से एक क्रान्तिनिष्ठ जमात क्रान्ति करे और जनता उसका साथ दे, यह लोकक्रान्ति की प्रक्रिया नहीं है। वस्तुतः यह प्रक्रिया युद्ध की है। क्योंकि इसके लिए सामने कोई अवांछनीय जमात चाहिए जिस पर प्रहार किया जा सके। उपरोक्त प्रकार की क्रान्ति की सफलता का मतलब है कि अवांछनीय जमात के हाथ से क्रान्तिकारी जमात के हाथ में समाज की बागडोर आ जाय और नयी जमात समाज में क्रान्ति का अधिष्ठान करे। इसमें दोष यह है कि क्रान्ति की निष्पत्ति क्रान्तिकारी जमात का निहित स्वार्थ हो जाता है। जिसके फलस्वरूप वह जमात समाज के लिए दूसरे प्रकार का अवांछनीय तत्त्व बन जाती है। इस प्रक्रिया का दूसरा दोष यह है कि आम जनता क्रान्तिकारी के पीछे चल कर उसके द्वारा कष्ट-मुक्ति की बात सोचती है, न कि क्रान्ति-विचार के अधिष्ठान की बात। फलस्वरूप वह अधिक मजबूती के साथ उस जमात की मुट्ठी के अन्दर चली जाती है, क्योंकि वह मानती है कि उसकी सुरक्षा जमात में है न कि विचार में।

सर्वोदय की क्रान्ति में ऊपर बताये हुए युद्ध-तत्त्व नहीं है। इस क्रान्ति की प्रक्रिया यही हो सकती है कि पूरे समाज में क्रान्ति का अनुप्रवेश कराया जाय। यही कारण है, कि विनोबा कहते हैं, 'क्रान्ति अहिंसक ही हो सकती है जिसमें कोई किसी पर प्रहार नहीं करता है, बल्कि पूरे समाज को विचार का उपहार दिया जाता है'। इसी सिलसिले में वे यह भी कहते हैं कि अहिंसा में प्रतिकार नहीं सहकार होता है। क्योंकि इसमें सामनेवालों को सही ढंग से सोचने के लिए मदद करना होता है। वस्तुतः अहिंसा का मूल तत्त्व वही है जो क्राईस्ट ने कहा था—"पाप से घृणा करो और पापी से प्रेम करो।" इस सिद्धांत के अनुसार आप किसी जमात पर चाहे वह कितना भी पापी हो, प्रहार नहीं कर सकते हैं। उसे समझा ही सकते हैं कि वह अमुक प्रकार के पाप करता है जो उसी के हित में हानिकारक है।

हमारे मित्र का दूसरा प्रश्न क्रान्ति के सन्देशवाहकों के विषय में है। इसके लिए पहली बात यह समझनी चाहिए कि आज के अत्यन्त कोलाहलपूर्ण युग में क्रान्ति के प्रति लोगों का ध्यान आकर्षित करना पहली आवश्यकता है ताकि समाज में कुछ जिज्ञासा पैदा हो। विनोबाजी हर तबके के लोगों द्वारा ग्रामदान घोषणा-पत्र को व्यापकरूप से स्वीकार कराकर पूरे समाज का ध्यान इसकी ओर आकर्षित कर रहे हैं। उसके लिए वे समाज के हर श्रेणी के लोगों को इसमें शामिल होने को कहते हैं, ताकि शब्द का व्यापक प्रसार हो; जिसके परिणामस्वरूप अर्थ की जिज्ञासा पैदा हो। इसलिए क्रान्ति के विचार तथा व्यावहारिक व्यूह-रचना की दृष्टि से विनोबाजी की प्रक्रिया आवश्यक है। व्यावहारिक दृष्टि से कोई भी क्रान्तिकारी तब तक इन्तजार नहीं करेगा जब तक देश में व्यापक पैमाने पर क्रान्तिनिष्ठ व्यक्ति आगे न बढ़ें, क्योंकि विचार का व्यापक शंखदान ही वह मन्थन की प्रक्रिया है जिससे समाज के अन्दर से क्रान्तिनिष्ठ व्यक्ति ऊपर आ सकते हैं। तब तक जिस किसी में थोड़ी हलचल होती है उसी के हाथ में शंख दे देना आवश्यक है। दूसरी बात यह है कि जब किसी जमात का निर्माण नहीं करना है, तब समाज के हर व्यक्ति को सन्देशवाहक के रूप में मान लेना आवश्यक होता है। यही कारण है कि विनोबा देश की हर संस्था और जमात से इस काम को उठा लेने की बात कहते हैं।

वैचारिक पहलु यह है कि जब आप पाप से घृणा और पापी से प्रेम करना चाहते हैं तो सभी आपके मित्र हैं ऐसा मानना पड़ेगा। विचार के सन्दर्भ में दूसरी बात यह है कि सर्वोदय की क्रान्ति सर्व के लिए और सर्व के द्वारा ही हो सकती है। सर्व में सब प्रकार के लोग स्वाभाविक रूप से आ जायेंगे। सर्वोदय कोई विशिष्टवाद नहीं है। इसलिए उसके लिए कोई विशिष्ट जमात भी नहीं बन सकता है। सर्वोदय हो ही नहीं सकता, अगर सर्वोदय-समाज की स्थापना के लिए जो भी कुछ क्रान्तिकारी आन्दोलन चले उसमें सर्व का प्रवेश न हो सके तो। सर्वोदय-विचारक को यह निष्ठा रखनी होगी कि अमुक व्यक्ति चाहे जितना पापी हो आन्दोलन की प्रक्रिया द्वारा ही सुधरता रहेगा। अमुक प्रकार के व्यक्तियों को अलग करके सर्वोदय समाज की स्थापना हो ही नहीं सकती।

अब प्रश्न यह है कि जब ऐसे लोगों के माध्यम से विचार का सन्देश पहुँचाया जाता

पुपरी (मुजफ्फरपुर) का दंगा : सम्प्रदाय-निरपेक्षता के लिए गंभीर खतरे का संकेत

१ अक्तूबर की रात्रि में पुपरी से सूचना मिली कि वहाँ उसी दिन ४ बजे संध्या में दुर्गा-प्रतिमा-विसर्जन के अवसर पर साम्प्रदायिक दंगा हो गया है। दंगे का कारण एवं अन्य जानकारी नहीं प्राप्त हो सकी। श्री मथुरा प्रसाद सिंह पुपरी पहुँच गये थे और वहाँ खादी एवं अन्य कार्यकर्ताओं के साथ उन्होंने मानस-परिवर्तन एवं सेवा का कार्य प्रारम्भ कर दिया था।

२ अक्तूबर को पुपरी एवं सीतामढ़ी में अपने साथियों से सम्पर्क स्थापित करने का बहुत प्रयास किया लेकिन संपर्क न हो सका। ११ बजे दिन में मैंने बिहार के आरक्षी महाअधीक्षक से उनके पटना स्थित कार्यालय में टेलीफोन से बात की तो पता चला कि उन्हें भी विस्तृत जानकारी नहीं है, लेकिन प्राप्त सूचनानुसार दंगे में कुछ लोगों की मृत्यु हुई है।

३ अक्तूबर को प्रातः ५ बजे बिहार राज्य गांधी स्मारक निधि के राज्यमंत्री श्री सरयू प्रसाद एवं निधि के कार्यकर्ता श्री गया प्रसाद सिंह के साथ पटना से पुपरी के लिए प्रस्थान किया। मुजफ्फरपुर में बिहार खादी ग्रामोद्योग संघ के वरिष्ट नेता श्री कामेश्वरजी शर्मा भी पुपरी जाने में साथ हो लिये। लगभग १ बजे दिन में हम लोग पुपरी पहुँच गये। पहुँचने पर पता चला कि पुलिस के भय से बहुत से लोग घर छोड़कर भाग गये हैं और स्थिति पुलिस के काबू में है। हम लोगों ने राजनीतिक दल के स्थानीय कार्यकर्ता, हिन्दू एवं मुसलमान सम्प्रदाय के प्रमुख लोगों, अस्पताल में दंगे से पीड़ित घायलों; सरकारी अधिकारियों, दंगे के प्रत्यक्षदर्शी एवं दंगे से पीड़ित व्यक्तियों के परिवारों एवं अन्य सम्बन्धित व्यक्तियों से मिलकर स्थिति की जानकारी प्राप्त की।

प्राप्त सूचना से ज्ञात हुआ कि प्रतिमा-विसर्जन के कई दिन पहले से ही अनेक अफवाहें फैलती रही हैं। अल्प संख्यकों के बीच भी अनेक प्रकार की अफवाहें फैलती रही हैं और समय-समय पर इसकी सूचना सरकारी अधिकारियों को भी लोग देते रहे हैं। अल्पसंख्यकों के बीच अफवाह फैलती रही है कि मूर्ति-विसर्जन के अवसर पर बहुसंख्यक समुदाय द्वारा बड़े पैमाने पर उनकी हत्या एवं लूट-पाट की तैयारी की जा रही है, और बहुसंख्यकों के बीच अफवाह थी कि अल्पसंख्यक समुदाय द्वारा प्रतिमा-विसर्जन के दिन धर्म के नाम पर जुलूस भंग एवं प्रतिमा पर पथराव आदि करने की संगठित तैयारी हो रही है। पुपरी अंचल में रायपुर पंचायत के मुखिया ने रायपुर में सम्भावित दंगे की सूचना अधिकारियों को दी और पुलिस दस्ते के पहुँचने के कारण वहाँ कोई अप्रिय घटना नहीं हुई।

१ अक्तूबर को लगभग साढ़े तीन बजे दिन में रेलवे के प्रांगण में स्थित दुर्गामण्डप से प्रतिमा विसर्जन के लिए विशाल जुलूस प्रस्थान किया। जुलूस की सबसे आगे की पंक्ति में घातक हथियार से लैस ५०० से अधिक व्यक्ति थे।

उनके पीछे लगभग ५० राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के बालचर थे जो जुलूस का मार्ग-दर्शन एवं नियंत्रण कर रहे थे। उनके पीछे बाजा बजानेवालों का दल था जिसमें सबके सब मुसलमान थे। बाजावालों के पीछे एक ट्रक पर प्रतिमा थी और ट्रक के पीछे हजारों व्यक्ति तमाशा देखनेवाले थे।

पुपरी में शान्ति-समिति पहले से ही बनी है, जिसके हिन्दू और मुसलमान दोनों सदस्य हैं। शान्ति-स्थापना के लिए शान्ति-समिति के दोनों साम्प्रदाय के सदस्य जुलूस के साथ ही चल रहे थे। अफवाह के कारण शान्ति-समिति के अल्प-संख्यक सम्प्रदाय के सदस्य भयभीत थे और बहुसंख्यक समुदाय के सदस्य सशंकित। फिर भी दोनों साम्प्रदायों के कुछ सदस्य जुलूस के साथ थे। प्रतिवर्ष की भांति इस वर्ष भी जुलूस मार्ग की अनुमति अधिकारियों से लेनी पड़ी। अधिकारियों ने शान्ति-समिति के सदस्यों से बातचीत कर तथा दुर्गापूजा समिति के पदाधिकारियों को समझाकर जुलूस-मार्ग की अनुमति ऐसे रास्ते से दी, जिस रास्ते पर मसजिद, मदरसा एवं मुसलमानों की घनी आबादी नहीं पड़ती थी।

जुलूस उस चौराहे पर पहुँचा जहाँ से अनुमति-प्राप्त मार्ग शुरू होता था और मसजिद एवं मदरसा का मार्ग छूट रहा था।

है, तो लोगों पर उसका क्या असर होगा? असर फिरहाल बहुत प्रभावकारी नहीं होगा, यह सही है। क्योंकि अब तक जन-मानस में विचार-प्रचारक की तस्वीर एक उच्च कोटि के निष्ठावान व्यक्ति की है। अब तक लोक-मानस का अभ्यास अमुक व्यक्ति क्या कह रहा है उसे समझने का नहीं है, बल्कि यह है कि कौन व्यक्ति यह बात कह रहा है। सर्वोदय की क्रान्ति को अगर सफल करना है तो लोक-मानस का, कौन कह रहा है, इसके बदले क्या कह रहा है, इस दिशा में सोचने-विचारने का अभ्यास कराना होगा। क्योंकि अब तक वह यही मानता रहा है कि कोई राजा महात्मा, नेता, दल या संस्था सोचे, और उसे राहत पहुँचाये। इसीलिए विचार के सन्दर्भ में विचार-वाहक उसके आकर्षण का केन्द्र रहा है। जनमानस उसी को ठोक-पीट कर जाँचने का काम करता आया है। विचार पर ध्यान देने की आवश्यकता नहीं रही है।

हो सकता है कि परिस्थिति की मजबूरी के कारण विनोबा को जिस प्रकार के साधनों और व्यक्तियों का इस्तेमाल करना पड़ रहा है, उसके चलते जनता में सन्देशवाहक से ध्यान हटाकर विचार के प्रति ध्यान देने का भी अभ्यास बढ़े। क्योंकि आज जनता क्रान्ति के सन्देश को विनोबा के ही मुँह से नहीं सुन रही है बल्कि युग की परिस्थिति भी स्वतंत्र रूप से उन्हें सुना रही है। फिर भी यह सही है कि क्रान्ति के वाहकों की कमजोरी के कारण और आज की जनता की मनःस्थिति के कारण फिलहाल क्रान्ति की गति कुछ धीमी रहेगी और उसमें छीजन कुछ अधिक जायेगा। लेकिन इस मन्थन के फलस्वरूप समाज में से जो क्रान्ति तत्त्व ऊपर आयेगा वह इसकी गति को काफी तेज करेगा, यह मानना चाहिए।

—धीरेन्द्र मजूमदार

मूर्ति, बाजा, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के कार्यकर्ता एवं शान्ति-समिति के लोग तो चौराहे पर रुक गये लेकिन हथियार से लैस भीड़ तेजी से मसजिद एवं मदरसा की ओर दौड़ी। उस चौराहे पर पहले से ही कुछ मुसलमान जवान मदरसा एवं मसजिद में घातक हथियार से लैस इकट्ठा थे। मुसलमान जवानों ने अपना "नारे तकदीर अल्लाह हो अकबर" का पुराना नारा लगाया और मुकाबिला करने को तैयार हो गये। डर से बहुसंख्यक समुदाय के हथियार-लैस लोग बिना मुकाबिला किये भाग गये और जुलूस में शामिल हो गये। तरह-तरह की अफवाहें फैलने लगीं और दंगा शुरू हो गया।

दंगे में ४ अक्तूबर के प्रातः तक प्राप्त सूचनानुसार ४ मुसलमानों की मृत्यु घटना-स्थल पर ही हुई, तथा ११ मुसलमान एवं ५ हिन्दू घायल होकर अस्पताल में भर्ती हुए। उनमें से २ मुसलमान अस्पताल में ही मर गये। शेष ९ मुसलमान एवं ५ हिन्दुओं से हमलोगों ने अस्पताल में भेंट की।

पुपरी कम्यूनिस्ट पार्टी के मंत्री श्री शकूर साहब की दंगाइयों ने जुलूस में ही हत्या करने का प्रयास किया, जहाँ वे शान्ति-समिति के अन्य सदस्यों के साथ गये हुए थे।

फिर दंगाइयों ने दंगा की परिपाटी के अनुसार घर जलाने एवं सम्पत्ति लूटने का कार्यक्रम किया। श्री शकूरजी के घर पर आक्रमण किया लेकिन उनके परिवार के अन्य सदस्य श्री चण्डी चक्रवर्ती के घर चले गये थे। चक्रवर्ती परिवार ने उनकी जान की हिफाजत की, लेकिन शकूर साहब के घर के सटे निवासी सर्व श्री मोहम्मद हुसेन, मोहम्मद इस्माइल, मोहम्मद तसलीम एवं अब्दुल रसीद की हत्या कर दी गयी। इनमें से दो को तो उसी जगह स्थित लकड़ी के छोटे से मकान में आग लगा कर उसी में डाल दिया गया। एक व्यक्ति की हत्या मेला में फूँकनिया बेचते समय हजारों व्यक्तियों के सामने की गयी और एक व्यक्ति की हत्या करके मण्डप के निकट नाले में डाल दिया गया। इस प्रकार छः मुसलमानों की हत्या की गयी तथा ९ मुसलमान एवं ५ हिन्दू सख्त घायल हुए। अफवाह तो कुछ लोगों के लापता होने की भी थी लेकिन हमलोगों के बहुत प्रयास करने के बाद भी कोई व्यक्ति ऐसा न मिला जो बताता हो कि अमुक नाम का व्यक्ति लापता है।

जुलूस का स्वरूप, पहले से फैल रही अफवाहें, जुलूस से काफी दूर स्थित श्री शकूर के मकान पर धावा, बाजावाले मुसलमानों का बाल-बाल बचना तथा जुलूस में श्री शकूर मोहम्मद की हत्या का प्रयास, आदि से प्रतीत होता है कि दंगाइयों ने संगठित होकर तथा राजनीतिक दल से प्रभावित होकर दंगे का संयोजन किया था।

बिहार में जनसंघ एवं राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ को छोड़कर सभी दल अपने को सम्प्रदाय-निरपेक्ष मानते हैं लेकिन उन्हें शायद पता नहीं है कि 'सेक्यूलरिज्म' की जमीन उनके पैर के नीचे से खिसक रही है। किसी दल-विशेष को दोषी बताकर अपना कर्त्तव्य समाप्त मानना गलत होगा। सम्प्रदाय-निरपेक्षता में आस्था रखनेवाले हर व्यक्ति को सक्रिय होकर संगठित रूप से तेजी से फैल रहे इस रोग का इलाज ढूँढ़ना चाहिए।

— रामनन्दन सिंह

खादी और ग्रामोद्योग राष्ट्र की अर्थव्यवस्था की रीढ़ हैं

इनके सम्बन्ध में पूरी जानकारी के लिए

खादी ग्रामोद्योग (मासिक) पढ़िये **जागृति** (पाक्षिक)

(संपादक—जगदीश नारायण वर्मा)

हिन्दी और अंग्रेजी में समानांतर प्रकाशित

प्रकाशन का चौदहवाँ वर्ष।
विश्वस्त जानकारी के आधार पर ग्राम विकास की समस्याओं और सम्भाव्यताओं पर चर्चा करनेवाली पत्रिका। खादी और ग्रामोद्योग के अतिरिक्त ग्रामीण उद्योगीकरण की सम्भावनाओं तथा शहरीकरण के प्रसार पर मुक्त विचार-विमर्श का माध्यम।
ग्रामीण धंधों के उत्पादनों में उन्नत माध्यमिक तकनालाजी के संयोजन व अनुसंधान-कार्यों की जानकारी देनेवाली मासिक पत्रिका।
वार्षिक शुल्क : २ रुपये ५० पैसे
एक अंक : २५ पैसे

प्रकाशन का बारहवाँ वर्ष।
खादी और ग्रामोद्योग कार्यक्रमों सम्बन्धी ताजे समाचार तथा ग्रामीण योजनाओं की प्रगति का मौलिक विवरण देनेवाला समाचार पाक्षिक। ग्राम-विकास की समस्याओं पर ध्यान केन्द्रित करनेवाला समाचार-पत्र।
गाँवों में उन्नति से सम्बन्धित विषयों पर मुक्त विचार-विमर्श का माध्यम।
वार्षिक शुल्क : ४ रुपये
एक प्रति : २० पैसे

अंक-प्राप्ति के लिए लिखें

"प्रचार निर्देशालय"

खादी और ग्रामोद्योग कमीशन, 'ग्रामोदय'

इर्ला रोड, विलेपार्ले (पश्चिम), बम्बई—५६ एएस

वार्षिक शुल्क : १० रु०; विदेश में २० रु०; या २५ शिलिंग या ३ डालर। एक प्रति : २० पैसे
श्रीकृष्णदत्त भट्ट द्वारा सर्व सेवा संघ के लिए प्रकाशित एवं इण्डियन प्रेस (प्रा०) लि० वाराणसी में मुद्रित